धर्मायण

मूल्य : 20 रुपये
अंक 94
वैशाख 2077 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

जानकी-नवमी पर विशेष

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

राम-रसोई की ओर से अयोध्या एवं फैजाबाद में जरूरतमंद और भूखे लोगों को भोजन

धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

1. आर्ष-साहित्य में जानकी-स्तोत्रों का स्वरूप 3
2. श्रीजानकी के जन्मदिवस का धर्मशास्त्रीय निर्णय 10
3. जानकीप्रातमंगलम् 14
4. जगज्जननी जानकी में रमता जनकपुर धाम
डा. रामभरोस कापड़ि भ्रमर' 18
5. विद्यापति के गीत में सीता-राम का प्रसंग
पं. शशिनाथ झा 23
6. सीता निर्वासन का विमर्श
आचार्य किशोर कुणाल 26
7. राम एवं सीता की मूर्ति का विमर्श
डा. सुशान्त कुमार 33
8. युगप्रवर्त्तक महापुरुष अभिनव जयदेव विद्यापति
डा. शंकरदेव झा 41
9. विद्या और विवेक में अन्तर
डा. राजनीति झा 57
10. सीताजी का बचपन (पुस्तक-अंश)
जहूरबख्श 'हिन्दी कोविद' 63
11. अध्यात्म-रामायण से राम-कथा (पुस्तक-अंश)
-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 67
12. मन्दिर समाचार 73
13. पर्व-त्योहार 77
14. मातभूमि-वंदना 79
15. रामावत संगत से जुड़िए 80

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 94
वैशाख 2077 वि. सं.
09 अप्रैल-7 मई, 2020

प्रधान सम्पादक
आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन : 0612-2223798
मोबाइल : 9334468400
E-mail: mahavirmandir@gmail.com
Web: www.mahavirmandirpatna.org
www.m.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : बीस रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक सख्या 93, चैत्र, 2077 वि.सं.)

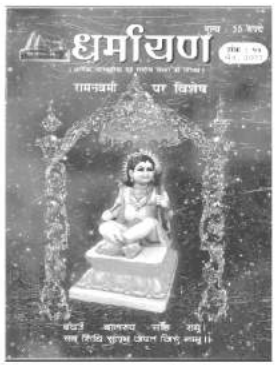

सच पूछा जाये तो मुझे धार्मिक पत्रिकाएँ पढने का खास अनुभव नहीं है, पर गीताप्रेस की पत्रिका कल्याण का विशेषांक मैं पढ़ता रहा हूँ, यदि सहज से प्राप्त हो जाये तो। साहित्य और संस्कृति के झमेला में ऐसे ही इतना उलझा हुआ रहता हूँ कि अन्य पत्रिकाएँ नजर के सामने से दूर होती चला जाती है।

महावीर मन्दिर पर धर्मायण पत्रिका देखता था, पर उतना ध्यान नहीं जाता था, इधर जब रानवमी पर केन्द्रित चैत्र 2077 का अंक मिला तो उसे गम्भीरतापूर्वक देखने का अवसर मिला। 16 शीर्षकों में बँटी इस पत्रिका का मूल विषय रामनवमी सन्दर्भ है, जिसमें श्रीराम के जीवन का कुछ सन्दर्भ सम्पादकीय आलेख में रखा गया है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, आचार्य किशोर कुणाल, पं. शशिनाथ झा, घनश्याम दास हंस की रचनाएँ हैं जो विविध विषयों पर केन्द्रित हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम शीर्षक पं. भवनाथ झा का बड़ा ही सारगर्भित सम्पादकीय पढ़ने का अवसर मिला। श्रीराम के विभिन्न सन्दर्भों का यहाँ गम्भीर विवेचन है। वास्तव में उनका चरित्र ही विशाल, भव्य एवं मर्यादित रहा है। एक स्थल पर भवभूति के प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरित (1.12) का हवाला देते हुए प्रसंग आया गै कि ख प्रेम, दया, सुख अथवा सीता को भी मैं प्रजा-पालन के लिए छोड़ सकता हूँ, मुझे कोई दु:ख नहीं होगा। यह भाव उनके उदात्त व प्रजाप्रेमी व्यक्तित्व का नि:सन्देह अप्रतिम स्वरूप है। पर, मिथिलावासी खासकर जनकपुरधाम के क्षेत्र में श्रीराम के इस निर्णय पर गला रुँध जाता है। जानकीजी का वनगमन दिल से उतरता नहीं है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्रति रत्ती भर भी दूरी हो। वहीं श्रद्धा, वही प्रेम, वही भक्ति। आचार्य किशोर कुणाल का वालि-वध की वैधता शीर्षक निबन्ध में श्रीराम द्वारा छिपकर वाली को मारने का प्रतिवाद किया है। अपने तर्क व साक्ष्यों के आधार पर आमने सामने ललकार कर युद्ध होने व उसमें वाली के वीरगति पाने की बात रखने का प्रयास किया है। वाल्मीकि-रामायण एवं रामचरितमानस के बाद सबसे अधिक पढी जानेवाली अध्यात्म-रामायण है। नेपाल के आदिकवि भानुभक्त कृत नेपालीरामायण इसी पर आधारित है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने इसी अध्यात्म-रामायण के आधार पर रामकथा का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। श्री घनश्यामदास हंस जी ने तो पंचकोशी परिक्रमायात्रा के बहाने हमारे यहाँ फागु-पूर्णिमा को प्रत्येक वर्ष आयोजित होनेवाला अन्तर्गृह-परिक्रमा का स्मरण करा दिया है। उसे भी 'पंचकोसी परिक्रमा' ही कहा जाता है। पर अब लोग इस शब्द को भूलते जा रहे हैं। पं. शशिनाथ झा का आलेख दीक्षाग्रहण की आवश्यकता दिखाता है। वे वैदिक साहित्य के ज्ञाता हैं, प्राचीन शिक्षापद्धति पर उनकी नजर की सूक्ष्मता यहाँ दीखती है।

सब मिलाकर सम्पादक ने एक आध्यात्मिक पत्रिका को अपने विशिष्ट ज्ञान से संग्रहणीय दस्तावेज के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है, जो उनका अन्यतम सत्कर्म है, इसे सभी क्षेत्र में सराहा जायेगा।

रामभरोस कापड़ि 'भ्रमर'
भ्रमरकुंज, शिवपथ, जनकपुरधाम

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com पर अथवा whatsApp. सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक गंगा-विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। इस अवसर पर सनातन धर्म, लोक-जीवन अथवा धार्मिक-साहित्य में गंगा से सम्बन्धित आलेख आमन्त्रित हैं।

आर्ष-साहित्य में जानकी-स्तोत्रों का स्वरूप

सम्पादकीय आलेख

ऋषियों के द्वारा उक्त साहित्य को हम आर्ष-साहित्य कहते हैं। वेद, पुराण, आगम, तन्त्र, संहिता आदि ग्रन्थ इसी आर्ष-साहित्य के विस्तार हैं। आर्ष-साहित्य वेद की तरह अपौरुषेय मान लिये गये हैं, फलतः इनके ऋषि इन मन्त्रों के द्रष्टा माने जाते हैं।

यहाँ पर इन आर्षग्रन्थों से जगज्जननी जानकी से सम्बद्ध स्तोत्र-साहित्य की एक रूपरेखा प्रस्तुत करना हमारा अभीष्ट है। विगत वर्षों में महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय के अन्तर्गत बड़ोदरा संस्कृत महाविद्यालय के पारम्परिक संस्कृताध्ययन विभाग के डा. रामपाल शुक्ल महोदय के सम्पादन में 'श्रीरामोपासनाकल्पद्रुम' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ है, जिसमें श्रीराम एवं श्रीजानकी से सम्बन्धित कतिपय स्तोत्रों का संकलन श्रीअंकुर पंकजकुमार जोषी ने किया है। संकलनकर्ता ने विभिन्न संग्रहालयों में स्थित अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का संकलन कर उसे संपादित कर संकलित किया है। इस कार्य में कभी-कभार पाण्डुलिपियों को पढ़ने में तथा पाठ-निर्धारण में इन पंक्तियों के लेखक का भी सहयोग रहा है, अतः मैं भी इस संकलन की महनीयता से परिचित रहा हूँ। एक-एक स्तोत्र के पाठ-निर्धारण के लिए अनेक पाण्डुलिपियों का उपयोग किया गया है। इसी महनीय संकलन में श्रीजानकी सम्बद्ध जो स्तोत्र संकलित हैं, उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना हमारा अभीष्ट है।

इन स्तोत्रों की विषयवस्तु एवं रचनाशैली देखने पर यह स्पष्ट होता है कि पारम्परिक रूप से गुरु-परम्परा से प्राप्त इन रहस्यों को परवर्ती साधकों ने अपना शब्द देकर पंक्तिबद्ध किया है तथा किसी प्राचीन स्थापित ग्रन्थ के अंग के रूप इन्हें स्थापित किया है। वास्तविकता यह भी है कि आगम-ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों तथा विधियों का शब्द से अधिक महत्त्व रहा है। अतः हम मान लेते हैं कि ये स्तोत्र जिन स्थापित ग्रन्थों के अंग माने गये हैं, उन ग्रन्थों की परम्परा के साधकों के द्वारा इन स्तोत्रों का व्यवहार होता रहा है।

1. श्रीसीतोपनिषद्

श्रीसीतोपनिषद् की गणना 108 उपनिषदों में होती है। मुक्तिकोपनिषद् में जहाँ सभी 108 उपनिषदों की सूची दी गयी है, वहाँ इसे अथर्ववेद से सम्बद्ध माना गया है। देवताओं के द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर प्रजापति के द्वारा इस उपनिषद् का प्राकट्य हुआ है। इसमें सर्वप्रथम सीता-तत्त्व का वर्णन है कि सीता प्रकृतिरूप हैं तथा शौनक की उक्ति में श्रीराम के सान्निध्य के कारण जगत् को आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, सभी प्राणियों की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करने वाली मूल प्रकृति हैं। सीता शब्द में सकार सत्य, अमृत एवं सोम का रूप है ईकार माया है तथा

तकार तारक लक्ष्मी का रूप है। सीता तीन स्वरूप में हैं- प्रथमा शब्दब्रह्ममयी, द्वितीया पृथ्वी पर हल के अग्रभाग से उत्पन्ना तथा तृतीया ईकाररूपिणी विष्णु की शक्ति, अव्यक्तरूपा। सीतातत्त्व के विवेचन में इस सीतोपनिषद् को महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है।

2. श्रीमैथिली महोपनिषद्

मैथिली महोपनिषद् के नाम से एक रचना का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इसके सम्बन्ध में अभीतक कोई सूचना नहीं मिली है।

3. रुद्रयामलतन्त्रोक्त श्रीसीतात्रैलोक्यमोहनकवच

यह सीताकवच रुद्रयामलतन्त्र की परम्परा का स्तोत्र है। इसमें लक्ष्मण की प्रार्थना पर श्रीराम स्वयं इस त्रैलोक्यमोहनकवच का प्रतिपादन करते हैं। इसमें सबसे पहले श्रीसीताजी का ध्यान है, जिसमें उन्हें नीलकमल के दल के समान आँखोंवाली, नील वस्त्र धारण करनेवाली, गौरांगी, शरत् की चन्द्रमा के समान मुखमण्डलवाली, हरि, हर एवं ब्रह्मादि के द्वारा स्तुति की गयी रामप्रिया जानकी कहा गया है। इसके बाद अन्य कवच की तरह शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा के लिए श्रीसीता के विभिन्न नामों का स्मरण किया गया है- भूभवा, जनकात्मजा, कुजा, श्रुतिरक्षिणी, जानकी, रामपार्श्वगा, महामाया, सुलोचना, वनवासिनी, मृगध्वंसिनी, भिल्लमोक्षिणी, वालिप्रमाथिनी, दैत्यनाशिनी आदि। इसमें श्रीसीता के अष्टाक्षर मन्त्र का उल्लेख हुआ है- "ह्रीं श्रीं सीतायै नमः।" इसके 10 हजार बार जप से सिद्धि का विधान है; किन्तु वटवृक्ष के नीचे केवल 1800 जप से सिद्धि की बात कही गयी है। श्रीराम की पूजा के समय इस सम्पूर्ण कवच के पाठ का विधान किया गया है। अन्त मे श्रीराम कहते हैं-

साक्षात्कल्पतरुः सीता ध्यायते यदि लक्ष्मण।
वाञ्छन्ति वरदा सद्यः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

इस स्तोत्र की पुष्पिका इस प्रकार है- **इति रुद्रयामलतन्त्रे श्रीरामलक्ष्मणसंवादे श्रीरामविरचितं सीताकवचम् सम्पूर्णम्।**

4. श्रीसम्मोहनतन्त्रोक्त त्रैलोक्यमोहन श्रीजानकीकवच

सम्मोहनतन्त्र से उद्धृत इस कवच के ऋषि हनुमान् हैं; आद्या शक्ति के रूप में श्रीजानकी देवता हैं, 'ह्रीं' बीज है तथा 'श्रीं' इस मन्त्र की शक्ति है। इस कवच के आरम्भ में अंग-न्यास, ध्यान, ऋष्यादि-न्यास तथा कीलमन्त्र का भी विधान किया गया है। कवच के अन्तर्गत बीजमन्त्रों के साथ विभिन्न अंगों की रक्षा के लिए सीता के विभिन्न नामों का उल्लेख है- रामवल्लभा, जनकात्मजा, वसुमती, हरिप्रिया, दृढव्रता, कञ्जविलोचना, नारायणी, कमला, राघवप्रिया, पद्मधारिणी, रामपार्श्वदा, गिरिजागिरा आदि। इसके अनुसार लक्ष्मण के कहने पर हनुमान् ने इस कवच का प्रतिपादन किया। हनुमान् कहते हैं कि जिस सत्य से मैने सागर पार किया; जिस सत्य से मैंने लंकादहन किया उसी सत्य से यह कवच प्रतिपादित है। हनुमानजी द्वारा प्रोक्त इस कवच को बाद

में ब्रह्मा ने जगत् में प्रचारित किया। इस कवच में श्रीजानकी की गायत्री का यह स्वरूप है- "सहजायै विद्महे रामपत्न्यै च धीमहि तन्नः सीते प्रचोदयात्।" प्रातःकाल में इस कवच के 1200 पाठ को इसका पुरश्चरण कहा गया है।

5. श्रीसम्मोहनतन्त्रोक्त बीजप्रयुक्तश्रीजानकीत्रैलोक्यमंगल कवच

सम्मोहन तन्त्र से ही यह दूसरा कवच भी उद्धृत किया जाता है। इसके भी ऋषि हनुमान हैं इसमें 'श्रीं' बीज है तथा 'स्वाहा' शक्ति है। हृदयादि-न्यास के बाद श्रीसीतामन्त्र से दिग्बन्ध का भी विधान किया गया है। इसके ध्यान में सीता की सहस्र सखियों का भी उल्लेख हुआ है, जो एक विशेषता है। यहाँ श्रीसीता का दशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है- "ऐं क्लीं ह्रीं ॐ श्रीं सीतायै स्वाहा।" कवचमन्त्र में सर्वत्र बीजमन्त्र के साथ रक्षा का विधान है। फलश्रुति में कहा गया है कि इस त्रैलोक्यमंगलकवच के पाठ से राजभय, चौरभय, हिंस्र-जीवादि का भय आदि समाप्त हो जाते हैं। एक मास का इसका पुरश्चरण माना गया है।

6. श्रीब्रह्मसंहितोक्त श्रीजानकीत्रैलोक्यविजयकवच

इस कवच के ऋषि ब्रह्मा हैं तथा श्रीजानकी आह्लादिनी शक्ति देवता हैं। त्रैलोक्यविजय इसकी फलश्रुति है। इस कवच के ध्यान में सगुण रूप में श्रीसीता को सर्वशक्तिमयी, द्विभुजा, नीलवस्त्र धारण करनेवाली कहा गया है। साथ ही, गोलोक के बीच सन्तानक वन में सखियों के साथ रत्न के सिंहासन पर खरबों सूर्य के समान प्रकाशवती श्रीसीता के दिव्य रूप का ध्यान किया गया है। इस कवच को यन्त्र के रूप में भूर्जपत्र अथवा स्वर्णपत्र पर लिखकर धारण करने की भी बात कही गयी है।

7. रुद्रयामलोक्त सीतानमस्कारस्तोत्र

यह नमस्कारस्तोत्र शिवभैरव संवाद के अन्तर्गत माना गया है। कहा गया है कि नैमिषारण्य में शौनक आदि महर्षियों के पूछने पर महर्षि नारद ने परमपावन कथा के रूप में इस सीता-स्तोत्र का प्रतिपादन किया। इसमें प्रत्येक श्लोक के उत्तरार्द्ध में "नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः" लगा हुआ है। 5 श्लोकों के इस स्तोत्र को प्रातःकाल में पाठ का विधान है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है- इति श्रीरुद्रयामले शिवभैरवसंवादे श्रीसीतानमस्कारस्तोत्रम् सम्पूर्णम्।

8. श्रीजानकी-स्तवराज

श्रीजानकी-स्तवराज को अगस्त्यसंहितान्तर्गत माना गया है। इसकी 1880 ई. में लिखित एक पाण्डुलिपि पेंसिलवानिया विश्वविद्यालय में है, जिसमें इसे अगस्त्य-संहिता का 39वाँ अध्याय कहा गया है किन्तु सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय की पाण्डुलिपि में इसे 41वाँ अध्याय माना गया है। इसकी विभिन्न पाण्डुलिपियों में श्लोक संख्या में भी अन्तर है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य एवं सिद्धान्त नामक ग्रन्थ में इसे रामोपासना की

परम्परा में रसिक-सम्प्रदाय से सम्बद्ध स्वतन्त्र रचना माना है। आचार्यजी ने उक्त ग्रन्थ में जिस 49वें श्लोक को उद्धृत किया है, वह सरस्वती भवन की पाण्डुलिपि में 54वें श्लोक के रूप में उद्धृत है। 'धर्मायण' पत्रिका की अंक संख्या 81 में सरस्वती भवन वाली उक्त पाण्डुलिपि का पाठ हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित है। श्रीरामोपासनाकल्पद्रुम में जो पाठ दिया गया है, उसमें श्लोकों की संख्या कम है तथा पुष्पिका में अगस्त्य-संहिता का उल्लेख नहीं है।

इस स्तोत्र की भूमिका इस प्रकार है कि श्रुतियों ने संकर्षण से सीता की दिव्य स्तुति के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की तो संकर्षण ने कहा कि भगवान् शिव ने श्रीराम की उपासना कर उन्हें प्रसन्न कर श्रीराम के मुख से जिस देवी सीता का स्तवराज सुना, उसका उपदेश उन्होंने देवी पार्वती को किया और देवी पार्वती ने कृपा कर मुझे बतलाया। इस प्रकार श्रीराम, भगवान् शिव, देवी पार्वती, संकर्षण एवं श्रुतियों के क्रम से यह स्तोत्र संसार मं प्रसिद्ध हुआ।

इस सम्पूर्ण स्तवराज में देवी सीता का नखशिखवर्णन है, जिसमें सर्वत्र अलौकिकता एवं सौन्दर्य की पराकाष्ठा का वर्णन काव्यमय शब्दों में किया गया है। इसका पहला श्लोक अनेक स्तोत्रों के साथ मन्त्र के रूप में पाया जाता है-

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं सन्मालसालिपरिपीतपरागपुञ्जम्॥

9. ब्रह्मयामलतन्त्रोक्त जानकीस्तवराजविधि

ब्रह्मयामल तन्त्र के हरगौरीसंवाद प्रसंग में श्रीजानकीस्तवराजविधि नामक एक पाठ आया है। इसमें पार्वती के प्रश्न पर भगवान् शिव के द्वारा यह विधि बतलायी गयी है। इसमें नवमी के दिन मिथिला के महाक्षेत्र में कमला के तट पर, अयोध्या तथा चित्रकूट में अथवा अन्य किसी भी नदी के शुभ तट पर जानकी-स्तवराज के पाठ का विधान किया गया है। इसमें पाठ-विधि के साथ केवल फलश्रुति दी गयी है। इस सम्पूर्ण पाठ से यह स्पष्ट नहीं होता कि अगस्त्य-संहितोक्त जानकीस्तवराज के पारायण की यह विधि है अथवा किसी अन्य जानकीस्तवराज की विधि है।

10. यामलसारोद्धारे मिथिलाखण्डे श्रीसीतारामात्मक कवच

इस स्तोत्र की पुष्पिका इस प्रकार है- इति यामलसारोद्धारे मिथिलाखण्डे श्रीसीतारामात्मकं कवचं सम्पूर्णम्। इस कवच के ऋषि ब्रह्मा कहे गये हैं। अन्य कवचों में जहाँ एक अंगों की रक्षा के लिए एक ही देवता के अनेक नामों का उल्लेख मिलता है, वहीं इसमें कुछ अंगों के लिए श्रीराम के पर्याय शब्द दिये गये हैं तथा कुछ अंगों के लिए सीता का नाम लिया गया है; जैसे दाहिनी आँख की रक्षा के लिए सीताजानिः अर्थात् श्रीराम का उल्लेख है तो वाम कर्ण की रक्षा के लिए कमलवासिनी सीता का स्मरण किया गया है। इस प्रकार शक्तिसहित श्रीराम का यह कवच अनूठा है।

11. महासुन्दरीतन्त्रोक्त श्रीसीतारामस्तवराज

यह भगवान् शिव एवं श्रीराम के संवाद के रूप में है। श्रीशम्भु एक साथ श्रीराम एवं श्रीसीता की स्तुति करते हैं। इस पर प्रसन्न होकर श्रीराम भगवान् शिव से वर माँगने के लिए आग्रह करते हैं और इस स्तुति की फलश्रुति प्रकट करते हैं कि जो इससे मेरी स्तुति करेगा उसके हृदय में सदा मेरा वास होगा। इसमें कुल 20 श्लोक हैं। इस स्तोत्र की पुष्पिका इस प्रकार है- इति श्रीमहासुन्दरीतन्त्रे परमरहस्ये श्रीसीतारामस्तवराजः सम्पूर्णः।।

12. श्रीजानकीचरमशरणागत मन्त्र

यह जानकीशरणागतिपञ्चक के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में श्रीसीता की प्रसिद्ध उक्ति "पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम। कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।।" को श्रीजानकीजी का व्रत-वाक्य माना गया है तथा इसके बाद 5 श्लोकों में स्तुति की गयी है।

13. श्रीजनकजाप्रपत्तिसारस्तोत्र

यह भक्तभाव से परिपूर्ण 22 श्लोकों का एक सुन्दर स्तोत्र है। इसमें मानव के स्वभावज मानसिक दुर्गुणों से रहित करने की प्रार्थना की गयी है और परोपकारादि सद्गुणों के आधान के लिए देवी सीता की स्तुति की गयी है। 'हे देवी, मैं न तो अपात्र की पूजा करूँ न ही किसी सुपात्र की निंदा ही करूँ। जो दण्डनीय नही है, उसे मेरे हाथों दण्ड न मिले।' इसी प्रकार की प्रार्थना इसमें है। दया, करुणा, आचार, नीति आदि इस स्तोत्र में प्रधान रूप से पल्लवित हुए हैं। इसका स्रोत अज्ञात है, किन्तु भाषाशैली से यह किसी श्रेष्ठ कवि की रचना प्रतीत होती है।

14. श्रीसीताकृपाकटाक्षस्तोत्र

इसमें 19 श्लोक में काव्यमय शैली में स्तुति है। पंचचामर छन्द में निबद्ध इस स्तुति में रावणकृतशिवताण्डवस्तोत्र जैसा चमत्कार गुम्फित किया गया है। इसका एक श्लोक उदाहरण के लिए प्रस्तुत है-

तडित्सुवर्ण-चम्पक-प्रदीप्त-गौरविग्रहे
मुख-प्रभा-परास्त-कोटि-शारदेन्दुमण्डले।
विचित्र-चित्र-संचरच्चकोरशाव-लोचने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।

इसका भी स्रोत अज्ञात है।

15. प्रेमतन्त्रोक्त श्रीजानकीरक्षाकवच

यह केवल 5 अनुष्टुप् श्लोकों का एक कवच है। इसमें उक्त श्रीसीता के नामों में ईश्वरी, अतुलप्रभा, भक्तवत्सला, उर्विजा अघहारिणी श्रीरामवल्लभा आदि हैं।

16. ब्रह्माण्डपुराणे जानकीकवच

ब्रह्माण्डपुराण के धरणी-शेष-संवाद के प्रसंग में यह कवच उद्धृत माना गया है। इसमें धरणी के प्रश्न पर श्रीशेष सीताकवच का प्रतिपादन करते हैं। इसमें 19 अनुष्टुप् छन्द हैं। इस कवच का ध्यानमन्त्र इस प्रकार है-

अरुणारविन्दचरणां समुल्लत्तरुणार्कबिम्बकमनीयकुण्डलाम्।
मिथिलाधिपस्य तनयामुपास्महे विदेहविमलात्पलेक्षणाम्॥

17. श्रीसीतारक्षाकवच

यह एक पृथक् कवच स्तोत्र है। इसमें वंशस्थ छन्द में एक ध्यान श्लोक के बाद 9 अनुष्टुप् छन्दों में कवच है, जिसमें जानकी, त्रैलोक्यस्वामिनी, योगिवन्दिता, देवेन्द्रपूजिता, रामवल्लभा, मङ्गलविग्रहा, माधवीश्वरी आदि श्रीसीता के नाम हैं। इसका ध्यान इस प्रकार है-

सर्वेश्वरीं सर्वमुनीन्द्रवन्दितां मुक्तिप्रदां संसृतिविघ्नहारिणीम्।
साकेतसिंहासनमध्यसंस्थां नमामि सीतां सकलेष्टकामदाम्॥

18. श्रीसीतासहस्रनामावलिः

इसमें श्रीसीता के एक हजार नामों की सूची है। प्रत्येक नाम चतुर्थ्यन्त है तथा 'नमः' के साथ मन्त्र के रूप में है। इसे वाल्मीकि-रामायण के अद्भुतोत्तरकाण्ड से उद्धृत माना गया है।

19. सुन्दरीतन्त्रोक्त श्रीरामवल्लभाध्यानाष्टक

यह स्तोत्र 8 इन्द्रवज्रा छन्द में ग्रथित है तथा अंतिम 9वें श्लोक में फलश्रुति है। इसमें श्रीसीताजी की स्तुति रामवल्लभा की दृष्टि से की गयी है। श्रीसीतायज्ञपद्धति, श्रीजानकी-महायज्ञपद्धति तथा श्रीजानकी-पूजन-पद्धति इन तीनों स्थलों पर यह स्तोत्र पठित है।

20. श्रीमैथिलीद्वादशनामस्तोत्र

इसे श्रीजानकीचरित्रामृत नामक ग्रन्थ में नवयोगेश्वर प्रोक्त स्तोत्र माना गया है। इसमें श्रीसीता के बारह नाम इस प्रकार हैं- मैथिली, जानकी, सीता, वैदेही, जनकात्मजा, कृपापीयूषजलधि, प्रियार्हा, रामवल्लभा, सुनयनासुता, वीर्यशुल्का, अयोनिः तथा रसोद्भवा।

21. श्रीजानकीद्वादशनामस्तोत्र

श्रीसीता के 12 नामों से संवलित एक अन्य स्तोत्र भी है, जिसमें अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध ध्यान में एक विशेषता उल्लेखनीय है कि इसमें श्रीसीता को वीणावादनतत्परा कहा गया है तथा हृदिस्थ दिव्य रूप में उन्हें दिव्य स्त्रियों से वेष्टित माना गया है। आगे रथोद्धता छन्द के 4 श्लोकों में स्तुति है।

22. श्रीरत्नसिंहासनीय श्रीसीतापञ्चायतन स्तोत्र

इसे सुन्दरीतन्त्र से उद्धृत माना गया है। तथा पूर्वोक्त जानकी-स्तवराज का पहला श्लोक **वंदे विदेहतनयापदपुण्डरीकं** इत्यादि से आरम्भ कर उसी छन्द तथा काव्यमय शैली में अन्य पाँच श्लोक तथा एक अनुष्टुप् छन्द में फलश्रुति के साथ यह स्तोत्र सम्पन्न होता है।

23. रुद्रयामलतन्त्रोक्त सकारादिसीतासहस्रनामस्तोत्र

रुद्रयामलतन्त्र के उमा-महेश्वर-संवाद के प्रसंग में यह सहस्रनाम माना गया है। देवी उमा के अनुरोध पर भगवान् शिव द्वारा उक्त इस सहस्रनाम में सभी नाम 'स' वर्ण से आरम्भ होते हैं- सीता, सीमन्तिनी, सीमा, सन्मन्त्रफलदायिनी, सत्या, सत्यवती, सौम्या आदि सहस्रनाम यहाँ पठित है। तालव्य शकार को भी यहाँ ग्रहण किया गया है। इसमें श्रीसीता को आदिशक्ति के रूप में माना गया है, अतः श्रीबगला, श्रीधूमा, श्रीमहालक्ष्मी, शालिका, शुम्भासुरनिकृन्तनी आदि नाम भी हैं।

24. श्रीमदानन्दरामायणान्तर्गत श्रीसीताकवचम्

आनन्दरामायण के मनोहर काण्ड में एक सीता कवच है, जिसके ऋषि अगस्ति मुनि हैं। इसमें सभी प्रकार के न्यासों का भी समावेश है तथा आरम्भ में सीता की स्तुति इस प्रकार की गयी है-

या सीतावनिसम्भवाथ मिथिलापालेन संवर्धिता
पद्माक्षी नृपतेः सुता नलगता या मातुलिङ्गोत्भवा।
या रत्ने लयमागता जलनिधौ या वेद वारं गता
लङ्कां सा मृगलोचना शशिमुखी मां पातु रामप्रिया॥२॥

सीता के ध्यान में उन्हें द्विभुजा, पीतवस्त्र से सुशोभित, श्रीराम के वामभाग में संहासन पर विराजमान एक हाथ में मन्दार पुष्प और दूसरे हाथ में मातुलिङ्ग से सुसज्जित तथा दासियों से परिवेष्टित माना गया है। इसकी फलश्रुति में कहा गया है कि सीताकवच के विना श्रीराम का कवच पाठ निष्फल होता है। अतः साधकों को चार कवचं का पाठ इस क्रम से करना चाहिए- हनुमत्कवच, लक्ष्मणकवच, सीताकवच तथा अन्त में श्रीरामकवच।

25. सिद्धेश्वरतन्त्रोक्तश्रीजानकीसहस्रनाम स्तोत्र

सन् 1855 ई. मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया मंगलवार के दिन लिखित एक पाण्डुलिपि पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय के भारतीय पाण्डुलिपि प्रभाग में संकलित है। इसकी संख्या Upen Ms. Coll. 390, item 2596 है। इसमें कुल 15 पत्र हैं, देवनागरी लिपि की इस पाण्डुलिपि में कुल श्लोकों की संख्या 135 है। इस सहस्रनाम के देवता वागीश्वरी हैं तथा सर्वकार्यसिद्धि में विनियोग है। पाण्डुलिपि का आरम्भ "श्रीमते रामानुजाय नमः" से हुआ है। लक्ष्मण के प्रश्न पर स्वयं श्रीराम ने जानकी के हजार नामों का उपदेश किया है।

इनके अतिरिक्त श्रीसीता से सम्बन्धित अनेक स्तोत्र हैं, जिनमें से अनेक प्रकाशित भी हो सकते हैं, कुछ अन्य स्तोत्रों की पाण्डुलिपियाँ अभीतक सम्पादित नहीं हैं।

***

श्रीजानकी के जन्मदिवस का धर्मशास्त्रीय निर्णय

जगज्जननी सीता के जन्मदिन के अवसर पर धर्मशास्त्रियों ने जानकी नवमी मनाने का विधान किया है। इस दिन व्रत एवं जानकी की विशेष पूजा करना का विधान है। यह जानकी नवमी किस दिन होगी, इस विषय पर यहाँ धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों से निर्णय दिये जा रहे हैं। **बृहद्-विष्णुपुराण** के मिथिला-माहात्म्य के अनुसार

वैशाखस्य सिते पक्षे नवमी तु मघसँयुता।
सैव मध्याह्नयोगेन शस्यते व्रतकर्मणि॥204॥

अर्थात् वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को मघा नक्षत्र के योग में जानकी नवमी का व्रत करना चाहिए। यह तिथि मध्याह्न में रहने पर प्रशस्त होती है। तिथि का क्षय हो अथवा वृद्धि हो अथवा किसी भी तिथि से विद्धा हो नवमी तिथि ही मान्य है।यदि दोनों दिन मध्याह्न काल में नवमी तिथि रहे तो अगले दिन जानकी नवमी मनाने का विधान यहाँ किया गया है।

मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या कर्म्मकालस्तु शस्यते।
परैव शस्यते तद्वै मध्याह्ने चेद्दिनद्वये॥206॥

आगे भी इसी बात को स्पष्ट करते करते हैं कि दोनों दिन नवमी प्राप्त हने पर अगले दिन व्रत करना चाहिए और दशमी में इस व्रत की पारणा करनी चाहिए। दशमी का लंघन किसी परिस्थिति में न हो।

दिनद्वयेऽपि तद्व्याप्तौ तदा सा गृह्यते परा।
दशम्यां पारणं शस्तं दशमीं नैव लंघयेत्॥207॥

यहाँ पर श्रीजानकी को प्रणाम करने का मन्त्र इस प्रकार दिया हुआ है-

दशाननविनाशाय जाता धरणिसम्भवा।
मैथिली शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता॥

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य कृत **वैष्णवमताब्जभास्कर** के चतुर्थ प्रश्न के 25वें श्लोक में जानकी-नवमीव्रत का निरूपण किया गया है। इस प्रसंग में रामानन्दाचार्यजी कहते हैं-

पुष्यान्वितायां तु कुजे नवम्यां श्रीमाधवे मासि सिते हलेन।
कृष्टा क्षितिः श्रीजनकेन तस्याः सीताविरासीत् व्रतमत्र कुर्यात्॥

अर्थात् वैसाख मास में शुक्ल पक्ष में पुष्य नक्षत्र से युक्त नवमी तिथि में श्रीजनक ने हल से क्षेत्र को जोता; इससे सीता उत्पन्न हुई। इस अवसर पर व्रत करना चाहिए। इस प्रकार रामानन्दाचार्य की परम्परा में भी इस दिन व्रतादि का विधान किया गया है।

मिथिला के तीर्थों का विस्तृत विवेचन करते हुए धर्मशास्त्री निबन्धकार श्रीकृष्णठाकुर ने तीर्थों में स्नान, प्रणाम, परिक्रमा आदि के लिए संकल्पवाक्यों का भी समायोजन कर मिथिला के तीर्थों को प्रकाशित करनेवाले ग्रन्थ **"मिथिला-तीर्थप्रकाश"** की रचना की थी। इस ग्रन्थ का

प्रथम प्रकाशन 1887 ई. में महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह के काल में पचही निवासी बाबू तुलापति सिंह के निर्देशन में इन्हीं के व्यय से दरभंगा से हुआ था। इस ग्रन्थ में उन्होंने विभिन्न स्रोतों के आधार पर श्रीजानकी के जन्मदिवस का निर्णय इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

श्रीसीताजन्मदिनमाह॥

पद्मपुराणे॥

अथ लोकेश्वरी लक्ष्मीर्ज्जनकस्य पुरे सुता।
शुभक्षेत्रे हलोत्खाते तारे चोत्तरफल्गुने।
अयोनिजा पद्मकरा बालार्क्कशतसन्निभा॥
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेन सुन्दरी।
सीतामुखोद्भवात् सीता इत्यस्यै नाम चाकरोत्॥
शुभक्षेत्रे सीतामडीति प्रसिद्धे सीतामुखे लाँगलपद्धतिमुखे॥

पद्मपुराण में कहा गया है कि लोकेश्वरी माता लक्ष्मी जनक की नगरी में हल से खोदे गये शुभ क्षेत्र में, उत्तरफल्गुनी नक्षत्र रहने पर, अयोनिजा, सैकड़ो बाल सूर्य के समान चमकनेवाली, हाथ में कमल धारण करती हुई, हल से खींची गयी रेखा से बाल रूप में प्रकट हुई। हल की रेखा से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम सीता रखा गया।

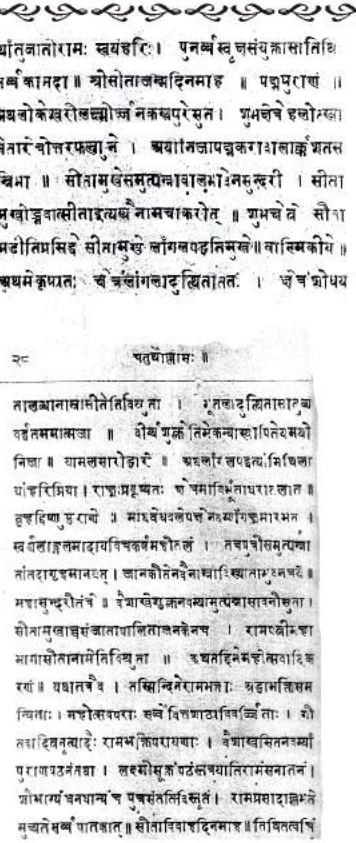
ख्यातुजातोरामः स्वयंहरिः। पुनर्व्वस्वृक्षसंयुक्तासातिथि
सर्व्वकामदा॥ श्रीसीताजन्मदिनमाह ॥ पद्मपुराणे ॥
अथलोकेश्वरीलक्ष्मीर्ज्जनकस्यपुरेसुता। शुभक्षेत्रे हलोत्खा
तेतारेचोत्तरफल्गुने। अयोनिजापद्मकराबालार्क्कशतस
न्निभा॥ सीतामुखेसमुत्पन्नाबालभावेनसुन्दरी। सीता
मुखोद्भवात्सीताइत्यस्यैनामचाकरोत्॥ शुभक्षेत्रे सीता
मडीतिप्रसिद्धे सीतामुखे लाँगलपद्धतिमुखे॥ वाल्मिकीये॥
अथमेकृष्यतः क्षेत्रंलाङ्गलादुत्थितातत। क्षेत्रंशोधय

२८ चतुर्थोल्लासः॥

तालब्धानाम्नासीतेतिविश्रुता। भूतलादुत्थितासाहु
र्वर्द्धतममात्मजा॥ वीर्य्यशुल्केतिमेकन्यास्थापितेयमयो
निजा॥ यामलसारोद्धारे॥ अथलाँगलपद्धत्यांमिथिला
यांहरिप्रिया। राज्ञःप्रकृष्यतः क्षेत्रमाविर्भूताधरातलात्॥
कृष्णपक्षेदशम्यां॥ माघवैधवलेपक्षेमध्याह्नेगुरुवासरे।
स्वर्णलाङ्गलमादायविचकर्षमहीतलं। तत्रपुत्रीसमुत्पन्ना
तांदत्वागृहमानयत्। जानकीतेनवैनाम्नाख्यातामुनिभिर्भुवि॥
महासुन्दरीतंच॥ वैशाखेशुक्लनवम्यामुत्पन्नासावनोसुता।
सीतामुखाद्भवसंज्ञापालितालनकेनच। रामपत्नीमहा
भागासीतानामेतिविश्रुता॥ अथतद्दिनमहोत्सवादिक
रणं॥ यद्यातत्रैव। तस्मिन्दिनेरामभक्ताः श्रद्धाभक्तिसम
न्विताः। महोत्सवपराः सर्व्वे विप्रणाठाविवर्द्धिताः। सी
तवादिनवृत्वादेः रामभक्तिपरायणाः। वैशाखसितनवम्यां
पुराणपठनंतथा। लक्ष्मीसूक्तंपठंस्तत्रयातिरामंसनातनं।
सौभाग्यंधनधान्यंच पुत्रसंततिरिष्यते। रामप्रसादाद्भक्ते
मुच्यतेसर्व्वपातकात्॥ सीताविवाहदिनमाह॥ तिथितत्वचि

शुभ क्षेत्र अर्थात् सीतामडी के रूप में प्रसिद्ध स्थान में। सीतामुख अर्थात् हल से खीची गयी रेखा के अग्रभाग में।

वाल्मीकीये॥

अथ मे कृष्यतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता॥
भूतलादुत्थिता सो तु व्यवर्द्धत ममात्मजा॥
वीर्य्यशुक्लेति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा॥

वाल्मीकि रामायण में भी कहा गया है- महाराज जनक कहते हैं कि जब मैं क्षेत्र का शोध न करने के क्रम में खेत में हल चला रहा था तब उसके अग्रभाग से यह कन्या उत्पन्न हुआ, जो सीता के नाम से प्रसिद्ध हुई। भूतल से उत्पन्न होकर यह मेरे घर में मेरी पुत्री के रूप में पली-बढ़ी। इस अयोनिजा कन्या को मैंने वीर्यशुल्का के रूप में प्रस्तुत किया है।

यामलसारोद्धारे॥

अथ लाँगलपद्धत्यां मिथिलायां हरिप्रिया।
राज्ञः प्रकृष्यतः क्षेत्रमाविर्भूता धरातलात्॥

यामलसारोद्धार में भी कहा गया है कि मिथिला में भगवान् विष्णु की प्रिया लक्ष्मी राजा जनक के द्वारा हल चलने से उत्पन्न मार्ग से धरातल से उत्पन्न हुई।

बृहद्विष्णुपुराणे।।

माधवे धवले पक्षे नवम्यां यज्ञमारभत्।।
स्वर्णलाङ्गलमादाय विचकर्ष महीतलम्।
तत्र पुत्री समुत्पन्ना तां तदा गृहमानयत्।
जानकी तेन वै नाम्ना विख्याता भुवनत्रये।।

बृहद्विष्णुपुराण में कहा गया- वैशाख मास के शुक्लपक्ष की नवमी के दिन यज्ञ का आरम्भ हुआ। राजा जनक ने सोने का हल लेकर पृथ्वीतल पर उसे जोतने लगे। इसके बाद पुत्री उत्पन्न हुई। उसे लेकर वे घर आये। अतः तीनों भुवन में वह जानकी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

महासुन्दरीतन्त्रे।।

वैशाखे शुक्लनवम्यामुत्पन्ना सावनीसुता।
सीतामुखाच्च सञ्जाता पालिता जनकेन च।
रामपत्नी महाभागा सीतानामेति विश्रुता।।

महासुन्दरीतन्त्र में भी उल्लेख है- वैशाख शुक्ल नवमी के दिन वह पृथ्वी की पुत्री उत्पन्न हुई। हल चलने से बनी रेखा के अग्रभाग से उत्पन्न हुई तथा जनक के द्वारा पालित हुई। वही महान् सौभाग्यवती सीता श्रीराम की पत्नी के रूप में प्रसिद्ध हुई।

अथ तद्दिने महोत्सवादिकरणम्।।

यथा तत्रैव।

तस्मिन्दिने रामभक्ताः श्रद्धाभक्तिसमन्विताः।
महोत्सवपराः सर्व्वे वित्तशाठ्यविवर्ज्जिताः।।
गीतवादित्रनृत्याद्यैः रामभक्तिपरायणाः।
वैशाखसितनवम्यां पुराणपठनं तथा।।
लक्ष्मीसूक्तं पठंस्तत्र याति राम सनातनम्।
सौभाग्यं धनधान्यं च पुत्रसन्ततिविस्तृतम्।।
रामप्रसादाल्लभते मुच्यते सर्व्वपातकात्।।

इस दिन महोत्सव करने का उल्लेख किया गया है। जैसा कि वही कहा गया है- उस दिन सभी रामभक्त श्रद्धा और भक्ति से साथ, धन के आडम्बर से रहित होकर महोत्सव का आयोजन करें। गीत, वाद्य, नृत्य आदि से रामभक्ति में रमे हुए लोग वैशाख शुक्ल नवमी तिथि को पुराणों का पाठ करें। इस दिन लक्ष्मीसूक्त का पाठ करते हुए भक्त श्रीराम के सनातन लोक जा पहुँचते हैं। उन्हें सुन्दर भाग्य, धन, धान्य तथा पुत्रादि सन्ततियों का विस्तार प्राप्त होता है। श्रीराम की कृपा से वे सभा प्रकार के पापों से मुक्त हो जाते हैं।

इन प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि जगज्जननी जानकी का जन्म दिवस वैशाख शुक्ल नवमी तिथि है। - भवनाथ झा

***

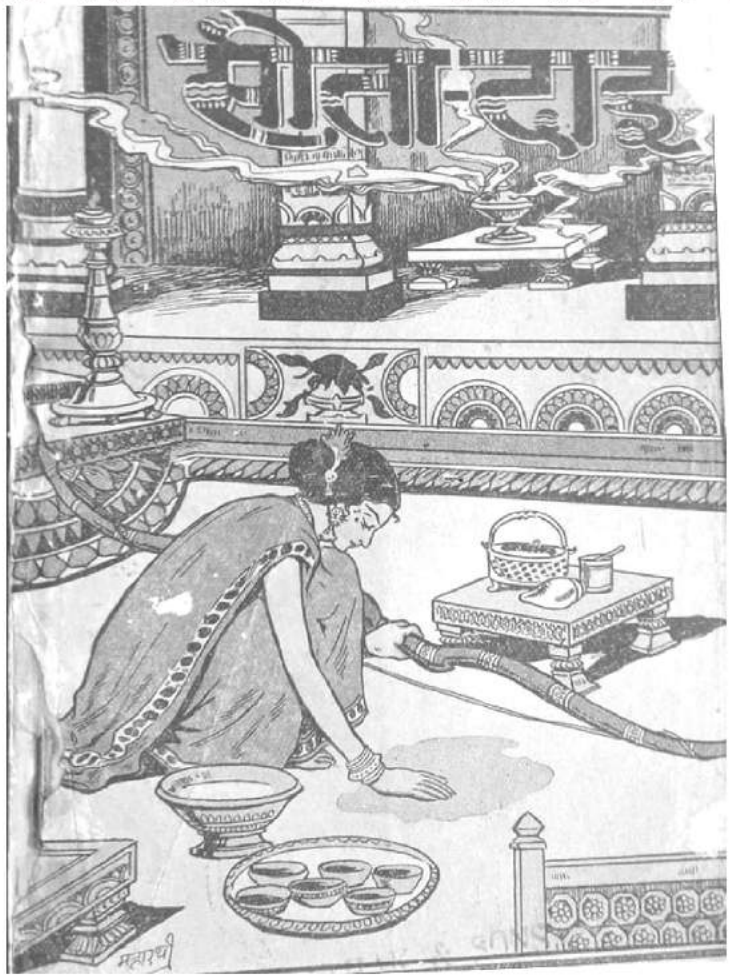

कथा है कि जिस शिव-धनुष को श्रीराम ने तोड़ा था, वह राजा जनक के महल में देवता-पूजन स्थान पर रखा रहता था। भगवान् शिव के उस महान् धनुष की प्रतिदिन पूजा होती थी। जिस वेदी पर वह धनुष रखा रहता था। उसके चारों ओर प्रतिदिन लीपकर सन्तोष कर लिया जाता था; क्योंकि वह तो किसी से टस-से-मस नहीं हो पाता था। एक दिन देवी सीता स्वयं उस वेदी को लीपने के लिए गयीं और बायें हाथ से उसने धनुष को उठाकर दाहिने हाथ से उसके नीचे की भूमि को लीप डाला और पुनः धनुष को यथास्थान रख दिया। इसकी सूचना जब राजा जनक को हुई तो उसी समय वे जान गये थे कि सीता कोई साधारण कन्या नहीं थीं; उसी समय उन्होंने संकल्प ले लिया था कि इस धनुष पर प्रत्यंचा चढानेवाले वीर पुरुष से इस कन्या का विवाह कराऊँगा।

इसी घटना को चित्रित करते हुए 1936 ई. में बिहार में तत्कालीन कला के शिखर पुरुष उपेन्द्र महारथी ने यह चित्र बनाया था। आचार्य रामलोचनशरण ने 'सीता-दाई' नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन इसी वर्ष किया था, जिसके मुखपृष्ठ पर इस ऐतिहासिक चित्र को छापा गया था।

जानकीप्रातमंगलम्

जानकीप्रातमंगल के नाम से पुरानी पाण्डुलिपि में दो पद मिलते हैं- राममंगल और जानकीमंगल। राममंगल पद की भनिता में कवि के रूप में माधवदास का नाम आया है तथा जानकीमंगल के पद की भनिता में कानरदास का नाम आया है। इस पाण्डुलिपि की मूल प्रति श्रीरघुनाथ मन्दिर, जम्मू के पुस्तकालय में संरक्षित है। इसकी परिग्रहण संख्या 1511 घ है। इसमें कवर सहित कुल पृष्ठ संख्या 9 है। जिसे ई-गंगोत्री नामक संस्था के द्वारा स्कैन कर archive.org वेबसाइट पर सार्वजनिक साहित्यिक उपयोग हेतु डाल दिया गया है।

इनमें से माधवदास निर्वाण साहेब की परम्परा में हीरादासी परम्परा के धर्मदास के शिष्य माधवदास के अभिन्न प्रतीत होते हैं। इनका जीवनकाल 1602 ई. से 1653ई. प्रसिद्ध है। "उत्तर भारत की सन्त परम्परा" नामक पुस्तक में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इनके लगभग 500 फुटकर पदों तथा 581 कुण्डलियों का उल्लेख किया है। इस पुस्तक में माधवदास के नाम से अन्य सन्त अज्ञात हैं।

दूसरे कवि कानरदास अज्ञात हैं। उपर्युक्त पुस्तक में आचार्य चतुर्वेदी ने इस नाम से किसी सन्त का उल्लेख नहीं किया है। हलाँकि पाण्डुलिपि में उपलब्ध कानरदास, कीनरदास, कानदास (भाण साहब के भाई), कान्हदास, कान्हरदास के बदले लिखे गये होंगे; ऐसा प्रतीत होता है। इनमें कान्हरदास ध्वन्यात्मक रूप से निकटतम नाम है। अतः कान्हरदास ही इस गीत के रचनाकार हैं, ऐसी सम्भावना बनती है। ये कान्हरदास निरंजनी सम्प्रदाय के 12 महन्तों लपट्यौ जगन्नाथ, श्यामदास, ध्यानदास, पूरणदास आदि में से एक हैं। हलाँकि आचार्य चतुर्वेदी ने अघोरपन्थ के कीनाराम की एक रचना के रूप में राममंगल का भी उल्लेख किया है। अतः इन दोनों पदों के कवि का व्यक्तित्व अन्वेषणीय है।

सम्भव है कि हमारे पूर्ववर्ती सम्पादकों ने इन दोनों पदों को अन्य पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादित कर किसी संग्रह में प्रकाशित किया हो, जिसकी सूचना मेरे पास न हो, तथापि जम्मू काश्मीर की परम्परा का यह पाठ महत्त्वपूर्ण है। केवल इन्हीं दोनों पदों को लेकर एक पुस्तक बनायी गयी है, जिससे यह प्रतीत होता है कि ये दोनों पद उस क्षेत्र में प्रसिद्ध रहे होंगे। अतः उक्त पाण्डुलिपि से सम्पादित कर इसे अर्थ के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

ॐ श्रीरामाय नमः

प्रात समै रघुवीर जगावै कोसल्या महतारी।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुरनर मुनि हितकारी॥ प्रात समै रघुवीर.॥1॥

सुन प्रिय वचन उठै रघुनन्दन नैनन पलक उघारी।
चेतव अभै कीयो चराचर मुदित भई नर नारी॥ प्रात समै रघुवीर.॥2॥

ब्रह्मादिक इन्द्रादिक देवता नारद मुनि रिषि चारी।
बानी वेद विमल जस गाबै रघुकुल जस विस्तारी॥ प्रात समै रघुवीर.॥3॥

भरथ शत्रुघण चवर डुरावै जनक सुता लिए जारी॥
मेवा पान लेये कर लछमन भर कंचन की थाली॥ प्रात समै रघुवीर.॥4॥

करि असनान दान बहु केनो गो-गज-कंचन-बारी।
माधव दास कहा लग बरनो तन मन धन बलिहारी॥ प्रात समै रघुवीर.॥5॥

इति राममंगलं सम्पूर्णम्।

अर्थ- प्रातः काल में माता कौशल्या श्री राम को जगाती ही कहतीं है- हे लाल, देवता, मनुष्य और मुनियों का कल्याण करने वाला प्रातःकाल हो चला है, अब उठो। रघुनंदन यह प्रिय वचव सुनकर आँखों की पलक खोलते हैं और अपनी दृष्टि से चर और अचर जगत् को अभय प्रदान करते हैं, जिससे सभी नर एवं नारियाँ प्रसन्न हो जाती है। इतना ही नहीं, ब्रह्मा आदि, इन्द्र आदि देवता तथा नारद मुनि और चार ऋषिगण सभी प्रसन्न हो जाते हैं। वेद की वाणी रघुकुल के यश का विस्तार करती हुई राम का यशोगान करने लगती है। भरत और शत्रुघ्न दोनों ओर खड़े होकर चँवर डुलाने लगते हैं और जानकी चरण धुलाने के लिए जल भरी झारी लेकर आ जाती है। लक्ष्मण सोने की थाल में मेवा और पान का बीड़ा भर कर उपस्थित हो जाते हैं। राम स्नान कर गाय, हाथी, सोना और भूमि दान करते हैं। कवि माधवदास कहते हैं कि मैं कहाँ और तक वर्णन करूँ, ऐसे श्रीराम पर तो मेरे तन, मन और धन बलिहारी है।

जानकीप्रातमंगल

ॐ श्रीरामाय नमः

प्रात समै उठि जनक नंदिनि त्रिभुवन नाथ जगाबै।
उठो नाथ मम नाथ प्राणप्रिय भूपति भुवन भुलाबै॥
प्रात समै उठि जनक नंदिनि त्रिभुवन नाथ जगाबै॥1॥

हस्त कमल कर चरण पलोटे लै लै धृग न लगाबै।
पद परसत की गौतम की नारी अबहि परम पद पाबै॥
प्रात समै उठि जनक नंदिनि त्रिभुवन नाथ जगाबै॥2॥

उरजी माल गली मोतियन की करि अंगुरी सुरजाबै॥
गोझर वारिअ लख वदन पर पाग को पेच बनाबै॥
प्रात समै उठि जनक नंदिनि त्रिभुवन नाथ जगाबै॥3॥

कनक कलस ज्यारि दारे आगे दान्तन दान कराबै॥
कमल नयन मुख निरख राम को आनंद उर न समाबै॥
प्रात समै उठि जनक नंदिनी त्रिभुवन नाथ जगाबै॥4॥

करिअ सनान दान बहु कीनो केसर तिलक चड़ाबै।
कानरदास कहा लगि बरनो चरन कमल चित लाबै॥
प्रात समै उठि जनक नंदिनि त्रिभुवन नाथ जगाबै॥5॥

इति जानकीप्रातमंगलम् सम्पूर्णम।

अर्थ- प्रात:काल में उठकर जनकनंदिनी सीता तीनों भुवनों के स्वामी श्रीराम को जगाती हुई कहती हैं- 'हे नाथ, मेरे प्राणप्रिय, अब उठो, महाराज अपने दशरथ अपने महल में बुला रहे हैं। अपने हस्तकमल से राम के हाथों और चरणों को बार बार पलोट रही हैं, किन्तु उन चरणों को देख नहीं रहीं हैं, क्योंकि वह जानती हैं कि दर्शन के साथ साथ स्पर्श करने से गौतम की नारी अहल्या तुरत परम पद को पा गयीं। राम के गले में जो मोती की माला उलझ गयी थी उसे बार-बार उँगलियों से सुलझा रही हैं। अपने आँचल का किनारा उनके मुख पर देखकर उसे हटाती है और उनकी पगड़ी को मजबूती बाँधने लगती है। सोने के कलश की बनी जल भरी झारी उनके आगे रखती हैं और उन्हें दतुवन और दान करातीं हैं। राम के कमलनयन को देखकर सीताजी का आनन्द हृदय में नहीं समाता है। राम स्नान कर बहुत दान करते हैं और केसर का तिलक लगाते हैं। कवि कानर दास कहते हैं कि मैं कहाँ तक वर्णन करूँ, मै तो बस राम के चरण-कमल में चित्त लगाता हूँ।

***

एतस्या मिथिलाभुवो जनकजा जाता च सीताभिधा
रामस्वाम्यभिमानभञ्जनकृते यादृक्स्वरूपं दधौ।
रक्षःश्रेष्ठसहस्रवक्त्रविजयप्रौढप्रमोदोदया-
च्छैवोरःस्थलनर्तकीमनुभजे ताङ्कालिकां कामदाम्॥19॥

इस मिथिला की पृथ्वी पर उत्पन्न, सीता नाम की, जनक की पुत्री ने स्वामी राम के अभिमान को तोड़ने के लिए जिस रूप को धारण किया था और राक्षसों में श्रेष्ठ सहस्रवक्त्र पर विजय पाने के कारण प्रसन्नता उत्पन्न होने पर शिव के वक्ष:स्थल पर नृत्य करनेवाली, कामनाओं को पूर्ण करनेवाली उस कालिका को भजता हूँ।

-राजनगरस्थ कालीमन्दिर शिलालेख, महाराजाधिराज रमेश्वरसिंहदेव)

गिरिजा-पूजन के पथ पर मैथिली

उपेन्द्र महारथी की पेंटिंग, 1935 ई., मिथिला मिहिर के "मिथिलाङ्क" में रंगीन प्रकाशित

रिपोर्ताज

जगज्जननी जानकी में रमता जनकपुर धाम

डा. रामभरोस कापड़ि भ्रमर*

कोरोना वायरस का विश्वव्यापी प्रकोप चल रहा है। भय का वातावरण ऐसा है कि इससे कोई भी अछूता नहीं रह पायेगा। जैसे सावधानी हटी दुर्घटना घटी! जब विज्ञान भी असफल हो जाता है, तब अध्यात्म ही एकमात्र सहारा बन लोगों को सहलाता है। चलो, देव की कृपा रही तो यह समय भी काट ही जायेगा।

इसी उधेड़-बुन की घड़ी में यदि किसी आत्मीय का ऐसा अनुरोध आये कि मैं अपनी आराध्य देवी के जन्म अवसर पर कुछ प्रसंग पर नजर डालूँ तो कहने की बात नहीं, मन कितना हल्का हो जाता है! इसी बहाने अपनी आध्यात्मिक सम्पदा को स्मरण करने का सुख तो मिला, सो धन्यवाद मेरे प्रिय हितैषी को जिन्होंने मुझे इस नेक काम करने के लिए प्रेरित किया। अब मैं जनकपुरधाम को आगे रखकर इस विषय पर चर्चा करना चाहूँगा। सत्य बात तो यही है कि चर्चा का विषय भी तो जानकी-नवमी है, अर्थात् माता सीता का जन्मदिवस।

सम्प्रति नेपालस्थित जनकपुर धाम यद्यपि प्राचीन काल से ही विवाह पंचमी के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध रही है, किन्तु विगत शती में बुद्धिजीवियों के सत्प्रयास से यहाँ अब कुछ दशकों से जानकी-नवमी का भव्य आयोजन होने लगा है। लेखक स्वयं इस पूरे इतिहास के द्रष्टा रहे हैं। जनकपुर की हवा की जिस सुगन्धि का उन्होंने अनुभव किया है उसे अपना शब्द देकर मेरे अनुरोध को स्वीकारा है। जानकी-महोत्सव और विवाह पंचमी की भव्यता का वर्णन उन्ही के शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है। -सम्पादक

*अध्यक्ष- मैथिली साहित्य उत्सव नेपाल, भ्रमर कुंज, शिवपथ, जनकपुरधाम, नेपाल,

"जिस प्रकार रामनवमी की आधार-भूमि अयोध्या है, उसी प्रकार विवाह-पंचमी एवं जानकी-नवमी की आधार भूमि मिथिला है; संसार का कोई स्थान इसका विकल्प नहीं हो सकता।"

जनकपुर में विगत कुछ दशकों से जानकी-नवमी पूरे श्रद्धा के साथ मनायी जाने लगी है। जानकी मन्दिर में इस अवसर पर पारम्परिक रूप से पूजा-पाठ तो होते ही हैं, श्रद्धालुओं के द्वारा यह एक उत्सव के रूप में मनाया जाने लगा है। इस दिन जनकपुर के श्रद्धालु इतने तन्मय हो जाते हैं कि अपने घर शिशु के जन्म का वातावरण सर्वत्र बन जाता है।

जनकनंदिनी के जन्म के इस भक्तिमय अवसर पर नारियों के मुख से सोहर-गीत अनायास निकल जाते हैं। निम्नलिखित गीत को यहाँ बड़े जतन से गाया जाता है, जिसे स्थानीय कलाकार नृत्य-भंगिमा से प्रस्तुत करते हैं-

चलु चलु सखी सब देखन, सीता जनम लेल रे।
ललना रे, देखि देखि लोलय जग कि सुन्दर सुभग छवि रे।
सगरो बजै बधैया कि डिग डिग डंका रे।
ललना रे, बौरायल मिथिला नगरिया कि होश गमायल रे।

जनक लुटाबे सोना-रूपा, सुनैना वस्त्र-आभूषण रे।
ललना रे डुबल धरा, नब मगन, अवसर एहन कहाँ पायब रे।
खोंता बैसल गेल्ह कलपै, दैव भेल कपार पाथर रे।
ललना रे हमरो जे होइतइ पंख उड़ि हेरैत मनोरथ पुरैत रे।
खिलल उलासक फूल बसन्त आबि तुलायल रे।
ललना रे कला रसबंत भमर डुबल रस गागर रे।

अब तो मिथिला के अनेक स्थानों पर जानकी-नवमी मनायी जाती है। पर जनकपुर धाम में मनाने का अपना अलग अंदाज है। भले ही देरी से आरम्भ हुआ हो, अब यहाँ जानकी महोत्सव एक बड़े पर्व के रूप में मनाया जाने लगा है। इस बार भी कुमार विश्वास का राम-सीता प्रसंग के साथ कार्यक्रम भव्यतापूर्वक मनाने का कार्यक्रम तय किया गया है। पर कोरोना की महामारी शायद इसे संभव नहीं होने देगी। आगामी 3 मई, 2020 को जानकी नवमी महोत्सव होना है। पता नहीं तब तक स्थिति क्या रहती है? सब ओर भय का वातावरण है। पर सभी का ध्यान माँ जानकी की ओर ही है- हम उनकी कृपा से इस कष्ट से जरूर उबरेंगे। हम तो शतियों से कहते रहे हैं- **"अपना किशोरीजी के चरण दबएबै है, हम मिथिलेमे रहबै।"**

जनकपुरधाम में वर्षों पहले रामनवमी और विवाह-पंचमी के अवसर पर तो उत्सव होते थे, लेकिन जानकी-नवमी के अवसर कुछ नहीं होता था। उन दिनों मिथिला के मनीषियों को इसकी

चिन्ता भी सताये रहती थी कि आखिर किशोरीजी के जनकपुर में जानकी-नवमी का आयोजन क्यों नहीं मनाया जाता है!

मैथिलवाचस्पति श्रीधनुषधारी दासजी ने 1936 ई. में प्रकाशित 'मिथिला मिहिर' के 'मिथिलाङ्क' में अपने एक आलेख "जानकी-महोत्सव" में लिखा है कि- "वचनातीत परिताप का विषय है कि जानकी-महोत्सव विशेष समारोहपूर्वक मिथिला के प्रत्येक घरों मनाये जाने की क्या कथा, कहीं इसकी चर्चा भी सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। इतना दूर तक कि जो महाराज जनकक की पवित्र राजधानी, जगज्जननी श्रीजानकी के मायके जनकपुर में जिस प्रकाण्ड समारोहपर्वक विवाहपंचमी तथा रामनवमी मनायी जाती है, उसका प्राय: शतांश भी जानकी-महोत्सव की व्यवस्था नहीं की जाती है।"

पुन: अन्त में वे लिखते हैं- "अतएव अब अखिल मिथिला निवासी से तथा अपने देश के श्रीमान् तथा यावन्तो विद्वान्, नेपाल सरकार एवं जनकपुर के श्रीजानकी मन्दिर के व्यवस्थापक तथा महन्त महोदय गण खूब समारोहपूर्वक श्रीजानकी-जन्मोत्सव अवश्य प्रारम्भ कर दें।" (सम्पादक के द्वारा मूल मैथिली से हिन्दी में अनूदित) - *मिथिला मिहिर, मिथिलाङ्क, वसन्तपंचमी, 1936 ई. मैथिली खण्ड, पृ. 61-62*

इस सम्बन्ध में विचार करने पर एक अद्‌भुत बात देखने को मिलती है। जानकीजी की जन्मभूमि, मिथिला नरेश राजर्षि जनक की पुत्री का यह बड़ा स्थल यह जनकपुरधाम कर्णाटकाल से ही अस्तित्व में रहा होगा, यह बात राम मन्दिर में स्थापित एक ग्यारहवीं-बारहवीं शती की मूर्ति से ज्ञात होती है। पं. भवनाथ झाजी का यह मत है कि सद्योजात की यह मूर्ति उसी काल की हो सकती है। इसमें सद्य:उत्पन्न कार्तिकेय के साथ माता पार्वती की अलसायी मुद्रा है तथा एक शिवलिंग का अंकन ऊपर किया गया है। परिचारिकाएँ सद्य:प्रसूता पार्वती का उपचार कर रही हैं। पूरे जनकपुर में सबसे पुरानी मूर्ति यही है। इस पर विस्तार से बाद में बात करेंगे।

अभी उन्हीं माता जानकी के गृहप्रदेश पर एक नजर डालते हुए कुछ प्रसंग आगे करेंगे। यद्यपि यहाँ जानकीजी का जन्म हुआ था। उनका मन्दिर भी टीकमगढ़ की महारानी बृषभानु कुँवरि ने सौ साल पहले बनवा दिया था, पर उत्सव रामलला के जीवन से जुडे प्रसंगों को लेकर ही होता रहा।

वास्तव में इस पर शोधकर्ताओं ने ध्यान ही नहीं दिया कि आखिर जनकपुर में रामनवमी और विवाह-पंचमी तो भव्यता से मनायी जाती है पर जानकी-नवमी पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। कुछेक दशक पूर्व यहाँ रामनवमी और विवाह-पंचमी में पन्द्रह दिन से एक महीना तक का मनाया जाता था। बड़े बड़े दुकान, सर्कस, थियेटर, आया करते थे. विशाल रंगभूमि (बारहबीघा) में हाथीदौड़, घुड़दौड़ हुआ करता था। लोखों लोग इन दिनों आनंद करते थे। घर के लिए गर्म कपड़े, भाड़ा-वर्तन मसाला ढोल आदि खरीदकर साल भर के लिए लोग आश्वस्त हो जाते थे। इसमें टूरिंग टाकीज आया करता था। घिसी-पिटी पुरानी फिल्में पुआल पर बैठने का आनन्द आज भी रोमांचित कर देता है। मैं बहुत कुछ भूल जाता हूँ, लोग कहते हैं कि यह उम्र का दोष है, पर एक बात मैं कभी नहीं भूला हूँ कि इसी टूरिंग टाकीज में हाइस्कूल में पढ़ते समय मैंने पुआल

पर बैठकर देवानन्द की 'दुश्मन' फिल्म देखी थी।

उसी जगह जानकी-नवमी के अवसर पर कोई समारोह नहीं, उत्सव नहीं। हम जैसे बहुत लोग जानते भी नहीं थे कि जानकी जन्म दिवस कब होता है। मन्दिर में आन्तरिक पूजा-पाठ में सिमटकर इस मना लेना और बात थी।

प्रसन्नता विषय है कि कुछ वर्षों से इस पर ध्यान दिया जाने लगा है। बल्कि रामनवमी और विवाह-पंचमी के उत्सव में कमी आयी है। पहले जहाँ पन्द्रह दिनों से एक महीने तक का मेला यहाँ लगता था अब एक-दो दिन आन्तरिक पूजा-पाठ तक सिमट गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जनकपुर के मठ-मन्दिरों में सैकड़ों वर्षों से अयोध्या के सन्तों का वर्चस्व था। जनकपुर के राम मन्दिर, जानकी मन्दिर के अतिरिक्त भी अनेक मन्दिरों में वे लोग ही महन्त थे। इसीलिए उन्हीं सन्तों के प्रभाव से यहाँ के धार्मिक क्रिया-कलाप हुआ करते थे। जनकपुरधाम में लगनेवाले मेलों के अतिरिक्त लगभग ड़ेढ सौ वर्षों से चला आ रहा। अन्तर्गृह और मध्यमा-परिक्रमा भी उन्हीं सन्तों की देन है। घने जंगल में अनेक प्रकार के कष्टों को सहन कर इस परिक्रमा को स्थापित और विकसित करने वाले ये सन्त अयोध्या के रामानंदी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अयोध्या के साथ सम्पर्क के कारण 17वीं शताब्दी के बाद जनकपुर का एक स्वरूप उभरा और स्थानीय मकवानपुर के सेन राजाओं में प्रमुख रूप से माणिक्य सेन ने भूमि दान कर इसे विकसित किया। इस काल के अनेक दान-पत्र एवं अभिलेख इन राजाओं की महिमा का बखान करते हैं। अब हलाँकि यहाँ स्थानीय लोग महन्थ तो हैं, पर अयोध्या से उनका सम्पर्क हटा नहीं है।

जिस प्रकार रामनवमी की आधार भूमि अयोध्या है, उसी प्रकार विवाह-पंचमी की आधार भूमि मिथिला है। संसार का कोई स्थान इसका विकल्प नहीं हो सकता। जनकपुरधाम में विवाह-पंचमी अवसर पर यद्यपि प्रत्येक वर्ष अयोध्या से वारात के रूप में साधु-सन्त सहाँ पधारते हैं पर प्रत्येक पाँच वर्षों पर औपचारिक रूप से अयोध्या से ही भव्य झाँकी सहित बारात जनकपुर धाम पहुँचती है। जनकपुर में उनका भव्य स्वागत किया जाता है तथा उनकी गरिमायमयी उपस्थिति में पूर्ण रूप से मैथिल विवाह-पद्धति व परम्परागत संस्कार के साथ स्वागत और विदाई की जाती है। जब जानकी मन्दिर के प्रांगण में जानकी विवाहोत्सव का विधिवत् आरम्भ होता है, तो श्रद्धालुगण वर्तमान को भूलकर उसी भव्य अतीत में खो जाते हैं। वे तन्मय होकर अपनी वास्तविकता से दूर अद्वैत भाव के द्वारा सीता-राममय हो जाते हैं। काल की मर्यादा टूट जाती है

और वे वर्तमान कलियुग को छोड़कर त्रेतायुग में पहुँच जाते हैं। यह इस स्थान की गरिमा है, जिसमें उनकी तन्मयीभवन-योग्यता स्फुटित हो जाती है। इस समय हम यदि आँख मूँदकर ध्वनियों पर ध्यान दें तो अनुभव होगा कि किसी मैथिल के घर पारम्परिक विवाह सम्पन्न हो रहा है। हजारों दर्शक एवं नेपाल सरकार के सैकड़ों उच्चाधिकारी अतिथियों के समक्ष विवाह-विधि सम्पन्न होती है। सभी लोग उसी अद्वैत के आनंद में डूब जाते हैं और उसी सियाराममय जग में जब आराध्य के साथ तन्मयता की भावना आ जाती है तो काल की गति थम जाती है और उपस्थित ललनाएँ समधियाना से आयी बारातियों और समधियों को गाली देने लगती हैं। आखिर विवाह है तो उसके सारे रीति-रिवाज पूरे होंगे ही। अयोध्या से आये सन्त-महन्त भी उसी कालातीत सियाराम में मग्न होकर उस परमानंद के सागर में डूबे हुए मुग्ध होकर मिथिला की ललनाओं को लकारते हैं- "गाली पढ़ने में कमजोर मिथिला की नारी।" पर नारियाँ कमजोर नहीं, बस संकोच करतीं हैं, कहीं दशरथ जी नाराज न हो जायें। वे तो अवध के हैं, मैथिल परम्परा से अनभिज्ञ," पर बाराती भी कहाँ माननेवाले होते हैं। उस आनंदकन्द के रस में डूबकर साधारणीकरण के प्रवाह में ही तो कह उठते हैं- "आप निश्चिन्त होकर सुनाएँ. हम तैयार हैं।" तब आरम्भ हो जाता है, वह अलौकिक भाव, जहाँ सभी लोग अपने निजत्व का परित्याग कर त्रेतायुग के उसी लीला के पात्र बन जाते हैं। भावों, अनुभावों और व्यभिचारिभावों का सम्मिश्रण उसी परमानन्दसहोदर रसप्रवाह में सबको डुबो देता है-

एहन सुन्दर राम लला के जुनि पढियौन केओ गारी हे।
हास विलास विनय दए पुछियनु उचित कथा दुई चारी हे।.
अकथ कथा पनिघट पर पुछबैन अपने कहा बिचारी हे।
गोरहि दशरथ गोरहि कोसल्या राम भरत किए कारी हे।
खीर खाए बालक जनमौलक अवधपुरी के नारी हे।
हँसी खुशी मिथिलासँ जएताह भेजि देता महतारी हे।
एहन सुन्दर वर राम लला कें जुनि पढियनु गारी हे।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम को यदि कही कोई गाली दे सकता है तो वह मिथिला की नारी ही अर्थात् इस जनकपुरधाम की नारी ही हो सकती है। इस प्रकार, जनकपुरधाम जगज्जननी सीता की गाथाओं में तन्मय हो जाता है। यह तन्मयता वैसी ही होती है जब अद्वैत की भावना के लोक में मनुष्य अपना निजत्व खो देता है, अपनी अस्मिता को भूलकर सियाराममय हो जाता है। भक्ति की पराकाष्ठा की यह अवस्था है। उस क्षण उसे लगता है कि जगज्जननी जानकी उसी बेटी है, उसकी बहन है और वे उसी भाव से जानकी से सम्बद्ध पर्वों को मनाते है। जिस रस में मीराबाई डूब चुकीं, जिस रस में अनेक सन्त भगवान् को खाना खिलाए विना नहीं खाते रहे, उसी रस में डूबने के बाद यह अद्वैत भाव जन्म लेता है जिसकी अधिकारिणी इस धरा पर केवल मिथिला ही है।

***

विद्यापति के गीत में

सीता-राम का प्रसंग

पं. शशिनाथ झा

सामान्य अवधारणा फैल गयी है कि मिथिला में सीता-राम से सम्बन्धित साहित्य-लेखन परवर्ती काल में हुआ है। आलोचकों ने यहाँ तक कह दिया है कि विद्यापति ने भी सीता-राम विषयक गीतों की रचना नहीं की। मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान् तथा पाण्डुलिपि के विशेषज्ञ ने प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर विद्यापति के प्रामाणिक गीतों में सीता-राम विषयक उनकी भक्ति का अन्वेषण किया है। एक सन्दर्भ आलेख के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

-सम्पादक

सीताराम के विषय में विद्यापतिकृत केवल दो गीत उपलब्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि इससे अन्य गीत भी रचे गये होंगे जो अभी उपलब्ध नहीं हैं। ये दोनों गीत नाम-कीर्तन से सम्बद्ध हैं। इस नाम के उच्चारण से लोग परम पवित्र हो जाते हैं। दुःख-विनिर्मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं। सीता साक्षात् आदिशक्तिस्वरूपा पराम्बा ही थी, जो मिथिला की धरती से उद्भूता वैदेही हुई और जनक राजा की पालित पुत्री होने से जानकी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

एक बार की बात है- महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी की पुस्तक 'रामकहानी' छप रही थी, जिसका प्रूफ देख रहे थे- उनके शिष्य महामहोपाध्याय मुरलीधर झा। उसमें एक वाक्य था- "जगज्जननी जानकी के जन्म के कारण मिथिला परम पवित्र मानी जाती है।"

पं. झाजी को यह वाक्य ठीक नहीं लगा। उन्होंने इसे बदलकर लिख दिया- "मिथिला को परम पवित्र जानकर जगज्जननी जानकी ने वहाँ जन्म लिया।"

पं. द्विवेदी ऐसा संशोधन देखकर बोल उठे- "मुरलीधर! तुमने यह क्या किया? यहाँ मिथिला की नहीं, सीता की महिमा का प्रसंग है। इस संशोधन से तो मेरा सन्दर्भ ही बिगड़ रहा है।"

पं. झा ने कहा- गुरुजी आपका तो सन्दर्भ बिगड़ रहा है, पर आपके वाक्य से तो मेरा देश ही बिगड़ रहा है। क्या सीता के जन्म से पूर्व मिथिला साधारण भूमि थी?

गुरुजी ने कहा- "जैसी तेरी मर्जी।"

---

* *पूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर व्याकरणविभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार) 846008, चल दूरभाष- 9199475909*

मिथिला परम पवित्र भूमि है, जहाँ जानकी ने जन्म लिया और मैथिल कवि विद्यापति ने उनका गुणगान किया। विद्यापति कवि ने (1350-1450) सीता के विषय में एक कूटपद (गूढार्थक गीत) लिखा जो इस प्रकार है-

रे नर! नाम सतत भज ताही। जाहि नहि जनक जननि नहि जाही॥
बसु नैहर, सासुर केर नाम। जननिक सिर चढ़ि गेलिह गाम॥
सासुक कोरहि सुतल जमाए। समधि विलह तओं बिलहल जाए॥
जाहि उदर सओ बाहर भेलि। से पुनि पलटि ततहि चलि गेलि॥
भनहि विद्यापति सुकवि सुजान। कविकें कवि कह कवि पहिचान॥

-विद्यापति-गीतावली, गीत संख्या-613, सम्पादक- पं. गोविन्द झा

इस गीत में प्रथम शब्द "रे नरनाह", मुद्रित था, जो यहाँ संगत नहीं बैठता है।। हमने इसे हस्तलेख से उतारनेवाले का भ्रम मानकर संशोधित कर दिया है- "रे नर! नाम।"

गीत का अर्थ-

रे मानव! सतत उसीके नाम का भजन करो, जिसके न तो पिता और न ही माता हैं। व्यंग्य अर्थ सीता है, जो माता-पिता से नहीं, भूमि से उत्पन्न हुई थी। आगे उसकी पाँच विशेषताओं को बतला रहे हैं-

(1) बसती है नैहर (मायके) में और नाम होता है सासुर का। पृथ्वी पर कहीं भी रहेगीं, माँ की गोद में रहने के कारण सीता का नैहर ही कहलायेगा। अयोध्या भी पृथ्वी पर ही है; अतः वहाँ वस्तुतः नैहर में ही है, फिर भी वह उसकी ससुराल कहलाती है।

2. सीता की जननी पृथ्वी, उसका सिर वृक्ष, उससे बनी डोली, उसपर चढकर अयोध्या 'गाँव' गयी थी।

3. रामचन्द्र की सास पृथ्वी है, वे जमाई होकर भी उसी की गोद में सोते हैं।

4. राजा दशरथ पृथ्वी के समधी हैं। राजा होने के कारण वे भूमि को बिलहते (विलभते-संस्कृत) हैं, तो वह बाँटी जाती है।

5. सीता जिस पृथ्वी के गर्भ से बाहर हुई थीं, अन्त में फिर उसी में समा गयी। कवि विद्यापति कहते हैं कि कवि को कवि ही पहचानता है।

ये सभी विशेषण सीता के साथ ही लगते हैं, दूसरे में लगाने पर उपहासास्पद हो जायेंगे। अतः जगज्जननी सतीसीमन्तिनी सीता सर्वोत्कृष्ट आदि शक्ति हैं। इन्ही के भजन से ऐहिक सुख एवं परमपद प्राप्त हो सकता है। सभी अर्थ व्यंग्य होने से यह उत्तम काव्य है।

सीता राम की पूरिका शक्ति हैं। उसके विना भगवान् राम अपूर्ण ही कहलायेंगे। उसी तरह श्रीराम के विना सीता परिपूर्ण नहीं हैं। अतः महाकवि विद्यापति ने रामनाम का गुण भी गाया है।

खेत कएल, रखबारे लूटल, ठाकुर सेवा-भोर।
बनिजा कएल, लाभ नहि पाओले, अलप मूर भेल थोर॥
रामधन बनिजहु लाभ अनेक॥ ध्रुव ॥
मोति मजीठ कनक हमे बनिजल, पोसल मनमथ चोर।
जोखि-परेखि मनहि हमे निरसल, धन्ध लागल मन मोर॥0॥
ई संसार हाट कए मानह, सबओ लोक बनिजार।
जे जस बनिज लाभ तस पाबए, मूरुख मरहि गमार॥0॥

-विद्यापति-गीतावली, गीत संख्या- 634.

यह गीत नेपाल से प्राप्त तालपत्र से प्राप्त है, जिसमें भनिता वाली अन्तिम पंक्ति नहीं है। यहाँ खेती, नौकरी और व्यापार में असफलता की सम्भावना दिखायी गयी है और रामरूपी धन के व्यापार में फैदा-ही फैदा कहा गया है।

गीत का अर्थ-

कोई रामभक्त कहता है- मैंने खेत में काम किया, पर उसकी उपज को रखवाले ने ही लूट लिया। मैं नौकरी मे गया तो मेरा ठाकुर (मालिक) ने मेरी सेवा को ही भुला दिया। फिर मैंने वाणिज्य (व्यापार) किया तो कुछ भी लाभ नहीं पाया, उसमें मेरा जो थोड़ा मूलधन (पूँजी) था वह भी थोड़ा हो गया।। अतः हे सज्जनों रामभक्ति रूपी धन (पूँजी) को व्यापार में लगाओ, इसमें अनेक लाभ हैं। पहले मोती, मजीठ (मञ्जिष्ठा औषधि) और सोना का बनीज (व्यापार) किया, किन्तु कामदेव रूपी चोर को भी पाल रखा था। उन सभी सामानों को तौल एवं देखकर भी मैं उससे निराश ही हो गया, मेरे मन में उनके लिए धन्ध (द्वन्द्व- द्विविधा) लगने लगी कि चोर से बच सकेंगे कि नहीं। इस संसार को हाट मानो, इसके सौदागर सभी लोग हैं। जो जैसा व्यापार करेगा वह वैसा लाभ पायेगा और मूर्ख गँवार मरेगा, उसे कुछ भी लाभ नहीं मिलेगा। अतः इन व्यापारों को छोड़कर रामरूपी धन को बढ़ाओ जो बढ़ता ही जायेगा, घटेगा नहीं। इसमें गँवार भी लाभ ही पाता है। रामनाम के कीर्तन से सभी मनोरथ पूरे होते हैं और मनुष्य निर्मल हो जाता है।

महाकवि विद्यापति के इन सीता-राम विषयक गीतों से कम ही व्यक्ति परिचित होंगे। अतः इसे अर्थ सहित यहाँ प्रस्तुत कर दिया गया है।

राम के विषय में एक और गीत प्रसिद्ध है जो वस्तुतः शिव की सेवाफल से निराश रावण की उक्ति है-

जौं हम जनितहुँ भोला मोरा ठकना, होइतहुँ राम गुलाम।
भाय विभीषन बड़ तप कएलन्हि, जपलन्हि रामक नाम॥ इत्यादि

इस गीत में भी विद्यापति ने रामभक्ति की महिमा का वर्णन किया है। विरोधी द्वारा गुणगान बड़े महत्त्व का है। इस तरह कवि की सीता-राम विषयक श्रद्धा अनुकरणीय है।

***

सीता निर्वासन का विमर्श

आचार्य किशोर कुणाल

जनकसुता सीता समस्त जगत् की जननी हैं; उद्भव, स्थिति एवं संहार की कारिणी शक्ति हैं तथा अखिल लोक के सकल क्लेश का हरण कर सर्वजन को कल्याण प्रदान करनेवाली मंगलमूर्ति हैं।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणींक्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥ (रामचरितमानस)

गोस्वामी तुलसीदासजी ने सीता माता को आदि-शक्ति, छविनिधि एवं जगत् का मूल माना है जिनके भृकुटि-विलास से ही समग्र संसार की सृष्टि हुई है -

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि शक्ति छविनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लछि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई॥

जगज्जननी जानकी जगन्निवास भगवान् श्रीराम की ललाम लीलाओं में सतत सहचरी रहीं। हरण के पूर्व भगवान् श्रीराम के परामर्श पर उन्होंने अग्नि में प्रवेश कर एक वर्ष के लिए अपने प्रतिबिम्ब को परवर्ती घटनाओं का पात्र बनाया। गोस्वामीजी ने इसका कितना सुन्दर वर्णन किया है -

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महु करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहि राम सबु कहा बखानी। प्रभुपद धरि हिय अनल समानी॥
निज प्रतिबिम्ब राशि तहँ सीता। तैसेइ सील रूप सुविनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कुछ चरित रचेउ भगवाना॥

अध्यात्म-रामायण में इसका वर्णन निम्नलिखित शब्दों में हुआ है -

रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेऽन्तिकम्।
त्वं तु छाया त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश॥
अग्नावदृश्यरूपेण वर्ष तिष्ठ ममाज्ञया।
रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत् प्राप्स्यसे शुभे॥ (अरण्य. 7.2-3)

रावण के वध के अनन्तर जब वास्तविक सीता अग्नि-परीक्षा से अक्षुण्ण निकलती हैं, तो भगवान् श्रीराम घोषणा करते हैं -

न शक्तः सुदुष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम्।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव॥

नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा॥
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥

दुष्ट रावण सीता को आतंकित करने में सर्वथा असमर्थ था क्योंकि वे प्रदीप्त अग्नि-शिखा की भांति किसी की पकड़ के बाहर हैं। सती सीता को रावण के अन्तःपुर में रहने पर भी व्याकुलता छू नहींसकती थी क्योंकि ये मुझसे उसी प्रकार अभिन्न हैं, जिस प्रकार सूर्यदेव से उनकी प्रभा । जनक-सुता सीता तीनों लोकों में परम पवित्र हैं और जैसे आत्मवान् पुरुष कीर्ति का त्याग नहींकर सकता, वैसे ही मैं सीता को छोड़ने में समर्थ नहींहैं।

जब भगवान् श्रीराम की यह घोषणा थी कि जिस प्रकार प्रभा सूर्य से पृथक् नहींहो सकती उसी प्रकार सीता मुझसे अलग नहीं हो सकतीं, तो क्या कारण है कि निराधार प्रवाद के आधार पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम ने सीता का निर्वासन किया?

आदि रामायण में सीता निर्वासन की कथा नहीं थी। आदिकवि वाल्मीकि-विरचित रामायण का समापन युद्धकाण्ड में ही राज्यारोहण, रामराज्य वर्णन एवं फलश्रुति के साथ हो जाता है। कोई भी निष्पक्ष, विवेकशील अध्येता रामायण के पारायण एवं विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर सहज, सत्वर पहुँच सकता है।

महाभारत के रामोपाख्यान, हरिवंश-पुराण, वायु-पुराण, विष्णु-पुराण एवं नृसिंह-पुराण में भी सीता-निर्वासन की कथा का अभाव है। परवर्ती तमिल कवि कम्ब की कृति एवं तुलसी के रामचरितमानस में भी उत्तरकाण्ड की कथाओं का समावेश नहीं हुआ

फिर भी सीता-त्याग की कथा अर्वाचीन नहीं है। कालिदास के रघुवंश की कथा एवं वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में साम्य है। भवभूति ने तो इस विषय पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ 'उत्तररामचरित' की रचना कर करुण रस को रसराज रूप में प्रतिष्ठित किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध-कथाओं में रावण की नगरी में वर्ष पर्यन्त रहने के कारण सीता के पूत चरित में सर्वप्रथम सन्देह का बीजारोपण हुआ। बौद्ध 'अनामक जातक' में इसका सर्वप्रथम संकेत मिलता है। इस जातक का अनुवाद चीनी भाषा में सन् 251 ई. में हुआ था। इसी से इसकी प्राचीनता एवं लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि इसमें सीता-निर्वाचन का उल्लेख नहीं है, किन्तु चरित्र में शंका का बीज-वपन अवश्य है। इस जातक कथा के अनुसार जब राजा ने रानी से प्रश्न किया कि पराये घर में रहने के कारण पत्नी के चरित्र पर शंका की जाती है; तब तुम्हें अपनाने में परम्परा-पालन का कितना औचित्य रहेगा। इस पर रानी ने प्रत्युत्तर दिया कि यद्यपि मैं एक अधम राक्षस की गुफा में थी फिर भी मैं पंकज की तरह निर्लिप्त एवं पवित्र थी और यदि मेरा सतीत्व अक्षुण्ण हो तो पृथ्वी फट जाये। और सीता के सतीत्व की अक्षुण्णता के प्रमाण में पृथ्वी फट गयी। तदनन्तर राजा और रानी सुखपूर्वक रहने लगे। जब इस कथा की लोकप्रियता बढ़ चली तो किसी परवर्ती कवि ने सीता-निर्वासन एवं द्वितीय परीक्षा

(जिससे विदीर्ण पृथ्वी में सीता समाविष्ट हो जाती है) की कथा उत्तरकांड में जोड़ डाली। उत्तरकाण्ड ऐसी ही परवर्ती कथाओं का भण्डार है। रावण का विस्तृत वृत्तान्त वेदवती-कथा, सीता-त्याग, शम्बूक-वध आदि प्रसंग ऐसी ही परवर्ती कथाओं के प्रतिफल हैं, जो मूल राम कथा की भावना एवं प्रेरणा के प्रतिकूल हैं। फिर भी, रामायण के उत्तरकाण्ड के रचना-काल से लेकर सद्य:समाप्त दूरदर्शनीय धारावाहिक रामायण तक सीता-त्याग के औचित्य का पृष्ठभूमि ढूँढने की चेष्टा की गयी है। उत्तरकाण्ड के सर्ग 51 में सुमन्त्र द्वारा लक्ष्मण को यह रहस्य बताया जाता है कि दुर्वासा ऋषि ने अतीत में ही राजा दशरथ को यह बतला दिया था कि भगवान् विष्णु द्वारा भृगु पत्नी की हत्या के कारण भृगु ऋषि ने विष्णु को यह शाप दिया था कि मनुष्य होकर तुमको भी पत्नी-वियोग का कष्ट झेलना पड़ेगा

तस्मात्त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन।
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्॥ (उत्तर. 51,16)

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी कालजयी कृति 'रामचरितमानस' में सीता-निर्वासन की कथा का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु गीतावली में वे लिखते हैं -

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराऊ।
सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आऊ॥
भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परहरे बिनु जानकी नहि और अनघ उपाय॥
पालिबे असिधार व्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होई हित केहि भाँति, नित सुविचाररू, नहिं चित चाउ।

दशरथजी अकाल काल कवलित हुए थे; अत: उनकी आयु का जो शेष भाग बचा था, वह भगवान् श्रीराम की आयु में जुट गया था। भगवान् श्रीराम ने अपनी आयु समाप्त होने हो जाने पर विचार तिया कि पिता की शेष आयु के जीवन में भार्य के साथ रहना उचित नहींहोगा, अत: उन्होंने सीता का त्याग कर दिया।

धारावाहिक रामायण में रामानन्द सागर की क्लिष्ट कल्पना जनसाधारण के मानस-निर्वासन का औचित्य वस्तुत: क्या है?

सीता-निर्वासन का सर्वसुन्दर औचित्य अध्यात्म-रामायण में मिलता है । वाल्मीकि रामायण में क्षेपकों द्वारा रमणीय रामकथा को विकृत करने के जो प्रयत्न हुए उनका रुचिर परिष्कार किया अध्यात्म रामायण के रचनाकार ने। अध्यात्म रामायण के प्रवक्ता हैं आशुतोष भगवान् शिव तथा श्रोता हैं जगन्माता पार्वती । तुलसी के मानस पर अध्यात्म रामायण की अमिट छाप स्पष्टत: दृष्टिगोचर है। अध्यात्म रामायण में सीता-त्याग का वृत्तान्त इस प्रकार वर्णत है -

एक दिन भगवान् रघुनाथजी अपने विपिन में एकान्त, सुखपूर्वक बैठे हुए थे। वहाँ सीताजी ने आकर प्रभु से प्रार्थना की "हे देवाधिदेव, हे जगन्नाथ, हे सनातन परात्मन्, हे सच्चिदानन्द, हे अनादि, अनन्त, सर्वकारण परमेश्वर, आपकी अनुपस्थिति में देवता लोग आकर मुझसे प्रार्थना करते

हैं कि भगवान् को वैकुण्ठधाम छोड़े हुए बहुत दिन हो गये, तथा जिस प्रयोजनार्थ भगवान् का अवतार इस धराधाम पर हुआ था, उसकी भी सिद्धि हो गयी। अब भगवान् को वैकुण्ठ-धाम लौट जाना चाहिए, किन्तु वे आपकी चित्-शक्ति से युक्त होकर ही वैकुण्ठ को छोड़कर भूतल पर ठहरे हुए हैं। अतः हे संसार को धारण करनेवाली जगज्जननी! यदि आप पहले वैकुण्ठ आ जायें, तो भगवान् भी स्वतः आपका अनुसरण कर वैकुण्ठ वापस आ जायेंगे और चिरकाल से सूना पड़ा हुआ वैकुण्ठ पुनः धन्य हो उठेगा। सीताजी ने देवताओं की विनती सुनाते हुए रघुवंशियों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम से उचित मार्ग दर्शन का अनुरोध किया। त्रिकालदर्शी भगवान् श्रीराम ने कहा कि देवताओं का अनुरोध उचित है, किन्तु आप इस समय गर्भावस्था में हैं। बच्चों के जन्म के उपरान्त उनकी सम्यक् शिक्षा-दीक्षा आवश्यक है। बालक के मनस्पटल पर संस्कारों का प्रस्फुटन गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। अतः बच्चों को इस समय सुष्ठु वातावरण की महती आवश्यकता है। इसके लिए किसी ऋषि का ही आश्रम उपयुक्त होगा। सम्प्रति महर्षि वाल्मीकि के आश्रम से अधिक उपयुक्त परिवेश कहीं नहीं है। अतः हे मैथिली, मैं कोई व्याज ढूँढकर आपको महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में भेज दूँगा। वहाँ सारी व्यवस्था उत्तम होगी। आप किंचित् चिन्ता न करेंगी। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के उपरान्त जब आप अयोध्या वापस आयेंगी, उसके तुरत बाद आप पाताल-मार्ग से वैकुण्ठ चली जायेंगी। कुछ काल बाद मैं भी आपका अनुसरण करूँगा और इस प्रकार देवताओं का मनोरथ पूर्ण होगा।" (उत्तर. 4, 32-44)

अध्यात्म-रामायण के इस वृत्तान्त से यह सुस्पष्ट है कि सीताजी को भगवान् द्वारा निष्कासित नहीं किया गया था वरन् उनकी सहमति से ही बालकों की श्रेष्ठ शिक्षा-दीक्षा के लिए ऋषि-पुंगव वाल्मीकि के आश्रम में वे भेजी गयी थीं। वाल्मीकि रामायण में भी भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मण को यही आदेश देते हैं कि जानकी को वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आओ; किसी अज्ञात स्थान पर छोड़ने की बात नहीं कहते। इससे भी यही ध्वनित होता है कि सीताजी का आश्रमवास एक सुनिश्चित, सुविचारित योजना का अंग था।

ऐसी कथा भी आती है कि एक बार राजा दशरथ अपने पुत्र राम की विलक्षणता देखकर विचार करने लगे थे कि मेरा पुत्र राम मुझसे सभी पक्षों में बढ़ चढ़ कर निकला; किन्तु एक पक्ष में यह पूर्ण पुरुष मुझे अतिक्रान्त नहीं कर सकता और वह यह है कि इसका पुत्र अपने पिता से अधिक तेजस्वी नहीं निकल सकता । घट-घट में निवास करनेवाले जगदीश ने तभी यह विचार किया था कि राजदरवार के परिवेश में तो उत्तम संस्कारों का अशेष समावेश नहीं हो पायेगा; किन्तु किसी ऋषि के आश्रम में ऐसा सम्भव अवश्य हो पायेगा। अतः उन्होंने अपनी भार्या सीता को क्रान्तदर्शी ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में भेजा जहाँ लव-कुश को शस्त्र एवं शास्त्र में वह परिपूर्ण शिक्षा मिली, जिससे रावण को पराजित करने वाली राम-सेना भी हतप्रभ हो गयी। आज भी अनेक माताएँ अपने पुत्रों के बेहतर भविष्य के लिए अपने मूल स्थान का त्याग कर उत्तम शिक्षाकेन्द्रों में किराये के मकानों में रहती हैं तथा अनेक कष्ट सहती हैं, किन्दु अपने पुत्र के स्वर्णिम भविष्य हेतु उस परिस्थिति को सहर्ष स्वीकार करती हैं। अतः हमें जानकीजी के वाल्मीकि

आश्रम-वास के मर्म को बिना समझे बूझे इसकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। भगवान् श्रीराम इस राष्ट्रके समग्र आदर्शों के पर्याय हैं - वे साक्षात् धर्म हैं (रामो विग्रहवान् धर्मः); अतः यदि उनके चरित का कोई बिम्ब किसी को स्पष्ट नहीं प्रतीत होता है, तो यह उस चरितवस्तु की कान्तिहीनता का द्योतक नहीं है, बल्कि उस मन-रूपी मुकुर की मलिनता का परिचायक है जिस पर अज्ञान या अहंकार का कल्मष चढ़ा हुआ है। आप इस आवरण को हटा लें; आपको तत्क्षण यह आभास होने लगेगा

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू॥

जानकीजी को वाल्मीकि के आश्रम में भेजकर वे आदि देव विज्ञान-चक्षु श्रीराम, जिनके पाद-पद्मों के सेवन में मुनिजन निमग्न रहते हैं, समस्त भोगों का परित्याग कर मुनियों की भांति वैराग्यपूर्वक जीवन-यापन करने लगे

रामोऽपि सीतारहितः परात्मा विज्ञानदृक्केवल आदिदेवः।
सन्त्यज्य भोगानखिलान् विरक्तो मुनिव्रतोऽभून्मुनिसेविताङ्घ्रिः॥ (उत्तर. 4,63)

पाठकों के ज्ञानवर्द्धन के लिए अध्यात्म-रामायण का उपर्युक्त अंश मूल संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद के साथ नीचे संकलित है -

एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः।
गृहमेधीयमखिलमाचरन् शिक्षयन् जनान्॥

एकपत्नीव्रत का पालन करनेवाले राजर्षि, सदा पवित्र भगवान् श्रीराम लोगों को शिक्षा देते हुए गार्हस्थ्य जीवन के सभी धर्मों का पालन करते रहे।

सीता प्रेम्णानुवृत्त्या च प्रश्रयेण दमेन च।
भर्तुर्मनोहरा साध्वी भावज्ञा सा ह्रिया भिया॥

अपने पति के मनोभावों के समझनेवाली सीताजी ने भी अपने प्रेम, अनुवृत्ति, नम्रता, संयम, लज्जा एवं भीति आदि गुणों के कारण उनका मन हर लिया था।

एकदा क्रीडविपिने सर्वभोगसमन्विते।
एकान्ते दिव्यभवने सुखासीनं रघूत्तमम्॥
नीलमाणिक्यसंकाशं दिव्याभरणभूषितम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम्॥
सीता कमलपत्राक्षी सर्वाभरणभूषिता।
राममाह कराभ्यां सा लालयन्ती पदाम्बुजे॥

एक समय भगवान् श्रीराम अपने क्रीडावन में समस्त सुख-सुविधाओं से सम्पन्न दिव्य भवन में अकेले सुखपूर्वक बैठे हुए थे। नीलमणि के समान उनके शरीर पर चमकते हुए अनेक आभूषण भरे थे। उनका मुख प्रसन्न और भावगम्भीर था तथा बिजली की करह चमकते हुए वस्त्र उनके शरीर पर थे। सीताजी भी सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित होकर उनके पैस दबाती हुई श्रीराम से बोली।

देव देवाः समासाद्य मामेकान्तेऽब्रुवन् वचः।
बहुशोऽर्थयमानास्ते वैकुण्ठागमनं प्रति॥

हे देवाधिदेव! हे संसार के स्वामी! हे परात्मन्! हे चिदानन्द! हे आदि, मध्य और अन्त से रहित! हे सबों के कारण स्वरूप! हे देव, देवताओं ने मुझसे आकर वैकुण्ठ पधारने के लिए बहुत प्रार्थना की है।

त्वया समेतश्चिच्छक्त्या रामस्तिष्ठति भूतले।
विसृज्यास्मान् स्वकं धाम वैकुण्ठं च सनातनम्॥

उनका कहना है कि आपकी ही चित्-शक्ति से युक्त होने के कारण ही भगवान् राम हम सबों को तथा अपने सनातन धाम को छोड़कर इस पृथ्वी पर ठहरे हुए है।

आस्ते त्वया जगद्धात्रि रामः कमललोचनः।
अग्रतो याहि वैकुण्ठं त्वं तथा चेद्रघूत्तमः॥
आगमिष्यति वैकुण्ठं सनाथान्नः करिष्यति।

हे संसार को धारण करनेवाली देवि! राजीवनयन राम सदैव आपके साथ ही रहते हैं। यदि आप पहले वैकुण्ठ आ जायें, तो रघुवर भी वैकुण्ठ पधारकर हम सबों को सनाथ कर देंगे।

इति विज्ञापिताहं तैर्मया विज्ञापितो भवान्।
यद्युक्तं तत्कुरुष्वाद्य नाहमाज्ञापये प्रभो॥
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा रामो ध्यात्वाब्रवीत्क्षणम्।

उन्होंने जैसे मुझसे कहा, वैसा ही मैंने आपको बतला दिया। हे प्रभो, जैसा कहा गया है, वैसा अब करें, इसमें मेरा कोई निर्देश नहींहै। सीताजी का वचन सुनकर भगवान श्रीराम क्षणभर सोचकर बोले -

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं वदामि ते।
कल्पयित्वा मिषं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम्॥
त्यजामि त्वां वने लोकवादाद् भीत इवापरः।

हे देवी, मैं सब कुछ जानता हूँ, अतः मैं आपको इसका उपाय बताता हूं। मैं आपके विषय में किसी लोकावपवाद का बहाना ढूँढकर आपको वह में लोकापवाद के डरनेवाले सामान्य जन की भाँति छोड़ दूँगा।

भविष्यति कुमारी द्वौ वाल्मिकेराश्रमान्तिके।
इदानीं दृश्यते गर्भं पुनरागत्य मेऽन्तिकम्।
लोकानां प्रत्ययार्थं त्वं कृत्वा शपथमादरात्।
भूमेर्विवरमात्रेण वैकुण्ठं यास्यसि द्रुतम्।
पश्चादहं गमिष्यामि एष एव सुनिश्चयः॥

(अध्यात्म., उत्तर.,4,30-44)

वहाँ महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में आपके दो पुत्र होंगे, अभी आपके शरीर में गर्भचिह्न दिखलाई पड़ते हैं। तदनन्तर आप फिर मेरे पास आकर लोगों की प्रतीति के लिए आदरपूर्वक शपथ करके पृथ्वी की छिद्र से वैकुण्ठ लोक को चली जायेंगी। तत्पश्चात् में भी वहाँ आ जाऊँगा। इस विषय में यही निश्चय रहा।

इस प्रकार सीता-निर्वासन की योजना जगदम्बा जानकी की सहमति से भगवान् श्रीराम द्वारा सुनिश्चित की गयी थी। सीताजी के वनगमन के अनन्तर भगवान् श्रीराम मुनियों की भाँति वैराग्यपूर्वक जीवन-यापन करने लगे तथा यज्ञों के अनुष्ठान में भी पत्नी की उपस्थिति के अनिवार्य विधान के बावजूद भगवान् श्रीराम ने स्वर्ण निर्मित सीता को वाम-भाग में प्रतिष्ठित कर एक पत्नीव्रत का महान् आदर्श उस युग में स्थापित किया जब बहुपत्नीप्रथा प्रथित रूप में प्रचलित थी। महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है -

न सीतायाः परां भार्यां वब्रे स रघुनन्दनः॥
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनीभवत्॥

भगवान् श्रीराम ने सीता के अतिरिक्त किसी अन्य से विवाह नहीं किया और प्रत्येक यज्ञ में पत्नी के रूप में सोने की जानकी रखी गयीं।

***

जगज्जननी जानकी करुणामयी हैं। लंका में राक्षसों ने उन्हें इतना सताया फिर भी हनुमानजी को उन्होंने राक्षसों के साथ इस प्रकार अत्याचार न करने का ही उपदेश किया।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥35॥

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥36॥

लोकहिंसाविहाराणां रक्षसां कामरूपिणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्॥37॥

दूसरे लोग जो बुराई करते हैं उनके पापकर्म को भले लोग नहीं अपनाते हैं। अतः अपनी प्रतिज्ञा और सदाचार की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि चरित्र ही सज्जनों का आभूषण होता है।

हे वानर, सज्जन व्यक्ति को चाहिये कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वे वध के योग्य अपराध करने वाले ही क्यों न हों, उन सब पर दया करें; क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध न किया हो

लोगों की हिसा करनेवाले, अपनी इच्छा से विभिन्न रूपों को धारण करनेवाले, पापकर्मों को करते रहनेवाले इन राक्षसों के प्रति कभी अशोभन कार्य नहीं करना चाहिए।

वाल्मीकि-रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग- 101

राम एवं सीता की मूर्ति का विमर्श

डा. सुशान्त कुमार*

राम एवं राम-दरबार की मूर्तियों का सदियों से उपयोग हो रहा है। अगस्त्य-संहिता में रामनवमी के दिन सोना, चाँदी अथवा मिट्टी की मूर्तियाँ बनाकर पूजा करने का विधान मिलता है। गुप्तकाल से राम की अनेक मूर्तियाँ भी मिली हैं। फलतः मूर्ति-विज्ञान की दृष्टि से पर्याप्त विवेचन भी मिल रहे हैं। बिहार के प्रसिद्ध पुराविद् एवं मूर्ति-विज्ञानी डा. सुशान्त कुमार ने राम की मूर्ति-विज्ञान पर गम्भीर विवेचन किया जो यहाँ प्रस्तुत है। -सम्पादक

वेद भारत के सांस्कृतिक विकास के अध्ययन के एक प्रमुख स्रोत हैं। वैदिक एवं लौकिक साहित्य से इतर रामायण एवं महाभारत को इतिहास-पुराण के अन्तर्गत रखा जाता है, इसे पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया जाता है। हिन्दू प्रतिमा विज्ञान वस्तुतः भारतीय धार्मिक जीवन के आधार पर ही विकसित हुआ। पार्जिटर, किरफिल, पुसालकर, रेप्सन, विण्टरनीज, मेयर, बोस, कोल्हटकर, दीक्षितर, एच. सी. राय चौधरी, हरदत्त शर्मा, ई. रोज, वी. स्मिथ, भंडारकर, जायसवाल आदि विद्वानों ने पुराण के आधार पर धर्म, दर्शन एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण का विवेचन किया; किन्तु पूर्णतः प्रतिमा-विज्ञान किसी का विषय नहीं रहा। फर्गुसन, हैवल, कुमारस्वामी आदि विद्वानों ने पुरातत्व के कतिपय क्षेत्रों यथा- शिलालेखों, सिक्कों, मुद्राओं के आधार पर प्रतिमा-विज्ञान के विभिन्न तथ्यों की खोज की। गोपीनाथ राव, जे.एन. बैनेर्जी, ग्रुण्डवेल, गांगोली, भट्टाचार्य, फूचर, स्टेला क्रेमिश, द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, इंदुमती मिश्र आदि विद्वानों ने पुराणों, आगमों तथा अन्य वास्तुशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का आधार लेते हुए प्रतिमा-विज्ञान का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अन्वेषण किया है।

प्राचीन भारतीय धार्मिक जीवन के आधार पर हिन्दू प्रतिमा विज्ञान के विकसित होने का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय समाज में देवपूजा के प्रारंभिक जानकारी का अभाव है। हिन्दू मूर्तियों के निर्माण के संबंध में भी जानकारी कुछ ऐसी ही है। किन्तु मौर्य काल तक आते-आते देवों की मूर्तियों के ढालने की जानकारी मिल जाती है। व्यापक सांस्कृतिक विरासत इतिहास को देव मूर्तियों के द्वारा समझा जाता है।

वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विष्णु के अवतार के रूप में कृष्ण की मूर्ति पूजा प्रमुखता के साथ होती रही है; लेकिन राम की मूर्ति पूजा अपेक्षाकृत कम है। रामकालीन युग, रामायण काल

*प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व के शोधार्थी, मूर्तिविज्ञान विषय पर विशेष अध्ययन एवं शोधकार्य,सम्प्रति- उत्तरी बिहार के पुरातत्व एवं इतिहास पर स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करते हुए शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक क्रियाकलाप।

में मूर्ति पूजा थी, या नहीं, इसपर भी विवाद है। समस्त रामायण में सर्वत्र केवल वैदिक यज्ञों तथा सन्ध्या-वन्दन का वर्णन है। मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं मिलता। मूर्तिपूजा विषयक श्लोकों का सर्वथा अभाव यह सिद्ध करता है कि जिस काल में प्रक्षिप्त अंश जोड़े गए उस समय भी मूर्तिपूजा जारी नहीं थी। मूर्तिपूजा के होने के सम्बन्ध में बालकाण्ड (77/13) एवं युद्धकाण्ड (123/20-21) के श्लोक को उदधृत किया जाता है। वाल्मीकि रामायण में उपासना तथा पूजादि के सम्बन्ध में सन्ध्यावन्दन, होम, यज्ञ आदि का उल्लेख विशद रूप से है, लेकिन कहीं भी मन्दिर या मूर्तिपूजा का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है।

केवल वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड के 25वें सर्ग में कौशल्या द्वारा मंगलवाचन के प्रसंग में देवालय एवं देवमूर्तियों का उल्लेख आया है-

येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च।
ते च त्वामभिरक्षन्तु वने वनचरैः सह।।4।।

अर्थात् हे पुत्र देवताओं के मन्दिरों में तुम जिन देवताओं को प्रणाम करते आये हो वे वन में महर्षियों के साथ तुम्हारी रक्षा करें।

बहुत सारे मंदिरों में केवल विष्णु के अवतारों की प्रतिमाएँ हैं तथा उनसे किसी अवतार की स्वतन्त्र पूजा प्रचलित होने की पुष्टि नहीं होती। वासुदेव के ध्वजस्तम्भ की तरह राम के ध्वजस्तम्भ नहीं मिलता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की मूर्ति स्वतंत्र रूप से बहुत ही कम मिलती है। वैष्णव धर्म से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों में अवतारवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। वैष्णव सम्प्रदाय के दशावतार में राम भी एक अवतार हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति में राम से सम्बन्धित किसी एक महत्त्वपूर्ण शाखा की जानकारी प्राप्त नहीं होती है, जबकि मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन के क्रम में रामाश्रयी धारा का विकास हुआ और इस काल में राम, सीता एवं राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान की ढ़ेरों प्रतिमा मिलने लगीं। प्राचीन काल में बहुत ही कम मूर्तियाँ मिलती हैं।

राम की स्वतन्त्र मूर्ति के न मिलने पर कई सवाल उठते हैं। यथा- राम को विष्णु के अवतार मानने और राम की प्रतिमा के कम मिलने पर कुछ सवाल उठते रहे हैं। प्राचीन काल में राम की स्वतन्त्र पूजा का कम मिलना और आज रामोपासना का काफी विस्तृत क्षेत्र में फैलने के पीछे की स्थिति को भी समझने की आवश्यकता बन जाती है। राम की मूर्ति की कमी के कारण एक प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि आखिर राम को किस कालखण्ड में अवतार रूप में स्वीकृति मिली। पतञ्जलि के महाभाष्य में उनके नाम का उल्लेख नहीं मिलता, अमरकोश के ब्राह्मण-धर्म के देव-मण्डल में भी उन्हें कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ। लेकिन रघुवंश के दसवें अध्याय में रामजन्म की कथा से पूर्व, क्षीर-सागर में चरण-सम्मर्दन करती हुई लक्ष्मी से युक्त और शेषनाग पर लेटे हुए विष्णु या नारायण की प्रचलित रूप से स्तुति की गई है। इस बात की सम्भावना है कि राम को अवतार के रूप में कालिदास के काल में मान्यता मिली, लेकिन स्वतन्त्र रूप से राम के निमित्त कोई धार्मिक मत नहीं था। कालान्तर में भवभूति ने राम के चरित्र को एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया और मर्यादा पुरुषोत्तम राम से सम्बन्धित स्वतन्त्र उपासना चल पड़ी।

कौशल्या और दशरथ के पुत्र राम को विष्णु का सातवाँ अवतार माना गया है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त भागवत पुराण, अग्निपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण-जैसे प्राचीन शास्त्रीय विभिन्न ग्रन्थों में राम के जीवन से सम्बन्धित आख्यान उपलब्ध हैं। प्रतिमाओं से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "अपराजितपृच्छा" में राम के जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया गया है लेकिन राम के प्रतिमा लक्षण उपलब्ध नहीं है।

सबसे पहले हमें वराहमिहिर की पुस्तक बृहत्संहिता में मिलती है, जहाँ दशावतार की मूर्तियों के साथ दाशरथी राम की द्विभुज प्रतिमा बनाने का विधान किया हुआ है। साथ ही राम की प्रतिमा दशताल मान से 120 अंगुल बनाने का उन्होंने उल्लेख किया। यहाँ यह जाना जा सकता है कि चेहरा की लम्बाई (ठुड्डी से ललाट ऊपरी हिस्से तक) को एक ताल कहते हैं, जिसमें 12 अंगुल होते हैं। स्थानक मूर्ति की लम्बाई यदि 10 ताल यानी 120 अंगुल की है तो उसे दशताल विधि की मूर्ति कहेंगे। भारतीय मूर्ति-विज्ञान के अनुसार सर्वोत्तम देवता की मूर्ति दशताल विधि से बनानी चाहिए। इस प्रकार वहारमिहिर ने राम की मूर्ति सर्वोत्तम देवता की मूर्ति की विधि से बनाने का उल्लेख किया है।

दशरथतनयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतं विंशम्।
द्वादशहान्या शेषाः प्रवरसमन्यूनपरिमाणाः॥57.30॥

अग्नि-पुराण में राम की चतुर्भुज अथवा द्विभुज बनाने का उल्लेख हुआ है-

रामश्चापी शरी खड्गी शङ्खी वा द्विभुजः स्मृतः॥ अध्याय 49

विष्णुधर्मोत्तर-पुराण में राम की मूर्ति राजसी चिह्नों के साथ बनाने का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर राम के साथ भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न की मूर्ति का भी उल्लेख हुआ है। इनमें जहाँ राम को मुकुट पहनाने का उल्लेख है, वहाँ अन्य के लिए मुकुट का निषेध हुआ है। इसी स्थल पर हम वाल्मीकि की प्रतिमा बनाने का भी उल्लेख पाते हैं

रामो दाशरथिः कार्यो राजलक्षणलक्षितः॥
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महायशाः॥६२॥
तथैव सर्वे कर्तव्याः किन्तु मौलिविवर्जिताः॥
गौरस्तु कार्यो वाल्मीकिर्जटामण्डलदुर्दृशः॥६३॥
तपस्याभिरतः शान्तो न कृशो न च पीवरः॥
वाल्मीकिरूपं सकलं दत्तात्रेयस्य कारयेत्॥६४॥

विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्/खण्डः ३/अध्याय ८१

रूपमण्डन, जो 10-11 शती का ग्रन्थ माना जाता है, इसमें धनुष एवं बाण के साथ राम की मूर्ति बनाने की बाद का संकेत भर कर दिया है। इस ग्रन्थ में जो मूर्ति की शैली दी गयी है वह कला चोल कला की मूर्तियों से मेल खाती है।

राममूर्तिनिर्माण विषयक ग्रन्थों में दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्र से सम्बन्धित मारीचि का वैखानस आगम सबसे विस्तृत विवेचन उपस्थापित करता है। यहाँ एक स्थान पर संक्षिप्त में तथा

दूसरे स्थान पर विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ राम के साथ सीता लक्ष्मण एवं हनुमान की भी मूर्तिविधि विस्तार से दी गयी है। राम की मूर्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि 120 अंगुल के मान से प्रतिमा बनावें, जिसमें त्रिभंग मुद्रा हो, दक्षिण हाथ में शर एवं बायें हाथ में चाप होना चाहिए। मूर्ति का रंग श्याम होगा। लाल रंग का वस्त्र तथा मुकुट आदि धारण करावें-

अथ राघवरामं सविंशतिशताङ्गुलमितं द्विभुजं त्रिभङ्गस्थितं दक्षिणेन हस्तेन शरधरं वामेन चापधरं श्यामाभं रक्ताम्बरधरं किरीटाद्याभरणान्वितं कारयेत्।

सीता की मूर्ति के सम्बन्ध में उल्लेख है कि राम का बाहु के बराबर ऊँचाई की प्रतिमा साढे नौ तालमान से बनावें। इस मूर्ति में त्रिभंग मुद्रा नहीं होगी, रंग सोने जैसा होना चाहिए। वस्तर का रंग सुगा के पंख के समान हरा होना चाहिए। सभी आभूषणों से सजावें तथा केशपाश बँधा हुआ रहे। करण्डिका अर्थात् बाँस की लम्बी टोकरी के समान मुकुट हो। बायें हाथ में नीले रंग का मल तथा दाहिना हाथ प्रसारित रहना चाहिए।

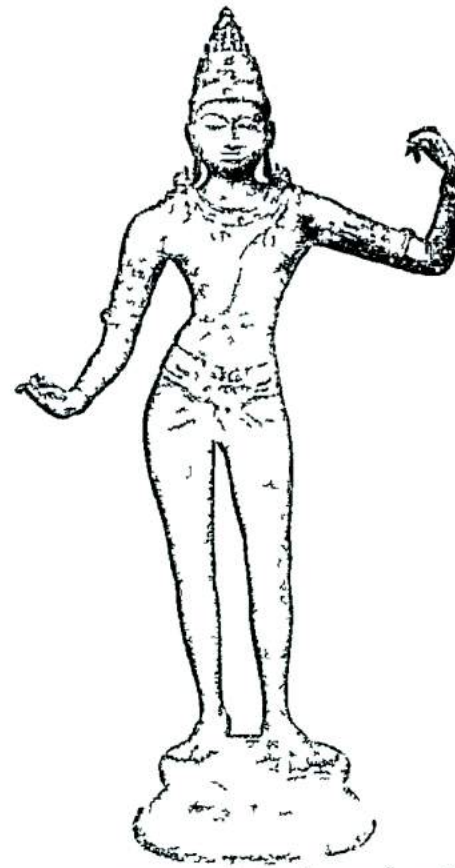

१६०--चोलकालीन (ई० दसवाँ ग्यारहवाँ सदी)
श्रीरामकी सर्वोत्तम प्रतिमा।

देवस्य बाहुसमां देवीं सीतां नवार्धतालमानेनाभङ्गवशाद्रुक्माभां शुकपिञ्छनिभाम्बरधरां सर्वाभरणभूषितां धम्मिलबन्धयुतां करण्डिका-मकुटोपेतां वामहस्तेन नीलोत्फुल्लपदमधरां प्रसारितदक्षिणहस्तां कारयेत्। देवस्य दक्षिणे पार्श्वे देवं किञ्चित्समीक्ष्य विस्मयोत्फुल्ललोचनां देवीं कारयेत्।

लक्ष्मण की मूर्ति के लिए कहा गया है कि या तो राम के समान ही 120 अंगुल की विधि से बनावें अथवा 116 अंगुल की विधि से। राम की मूर्ति में कान की ऊँचाई तक ही लक्ष्मण की मूर्ति होनी चाहिए अथवा इससे भी छोटा करना हो, तो राम की मूर्ति की बाहु की ऊँचाई तक कर सकते हैं। युवराज के योग्य आभूषण पहनावें। केश ऊपर की ओर उठे हों तथा राम के समान ही धनुष-बाण लिये हों। लक्ष्मण की मूर्ति में भी समभङ्ग होना चाहिए-

वामपार्श्वे कर्णसीमान्तं बाह्वन्तं वा लक्ष्मणं दशतालं षोडशाधिकशताङ्गुलं ..... उद्बुद्धकुन्तलं युवराजभूषणान्वितं द्विभुजं रामवच्छरचापधरं समभङ्गान्वितं कारयेत्।

वैखानस आगम में हनुमान की मूर्ति निर्माण-विधि विशिष्ट है। इसमें उन्हें राम के दक्षिण भाग में अवस्थित, राम की छाती के बराबर ऊँचाई वाले कम से कम नाभि तथा घुटने तक की ऊँचाई वाले बनाने का विधान है। सप्तताल विधि से बनायी गयी स्थानक मूर्ति में बायें हाथ से अपना वस्त्र सम्भालते हुए तथा थोड़े ऊपर मुँह किये हुए अंकित करने का विधान किया गया है।

[illegible] का अंकन, देवगढ़

हनूमन्तं प्रमुखे किञ्चिद् दक्षिणमाश्रित्य स्थितं देवस्य स्तनान्तं नाभ्यन्तमूरुमूलान्तं वा सप्तताल्मितं द्विभुजं दक्षिणेन हस्तेनास्य वामेन स्ववस्त्रं च पिधानं किञ्चिदूर्ध्वाननं कारयेत्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तकाल के बाद से राम की मूर्तियों के निर्माण सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री हमें मिलती है।

रूपमण्डन, देवतामूर्तिप्रकरण, मानसोल्लास, पद्मसंहिता, हयशीर्ष संहिता आदि ग्रन्थ में है। संस्कृत नाटककार भासकृत प्रतिमानाटक में राजकीय प्रतिमागृह में राम के सभी पूर्वजों की मूर्तियों की विद्यमानता का उल्लेख मिलता है। इसी नाटक से यह स्पष्ट होता है कि राम जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ कलाकृतियों द्वारा व्यक्त की जाती थीं। राम के जीवन से संबंधित घटनाओं का प्रस्तरांकन केवल भारत मे ही नहीं, अपितु भारत के बाहर जावा, कम्बोडिया आदि स्थानों पर भी मिलता है।

युद्ध करते हुए श्रीराम का अंकन, अंकोरवाट, कम्बोडिया

भारत में राम की प्रारंभिक मूर्ति के होने की जानकारी देवगढ़ के दशावतार मन्दिर से मिलती है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधिकारियों कनिंघम एवं दयाराम सहनी को इस मंदिर को प्रसिद्ध करने का श्रेय दिया जाता है। वासुदेव शरण अग्रवाल का अनुमान है कि इस मंदिर का निर्माण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के कनिष्ठ पुत्र गोविन्द गुप्त ने कराया था। दयाराम सहनी ने इस देवालय के प्रांगण में किसी स्तम्भ पर एक लघु लेख का पाठ किया था, जिसमें भागवत गोविंद के दान की चर्चा की गयी थी। डॉ. अग्रवाल के अनुसार इस

कंबोडिया, ११वीं शती की कलाकृति

लेख का गोविंद, वस्तुतः, गुप्तवंशीय राजकुमार गोविंदगुप्त ही था। इस राजवंश के सदस्य वैष्णव (भागवत) धर्मावलम्बी हुआ करते थे। देवगढ़ अभिलेख में वर्णित गोविन्द गुप्तवंशीय था या किसी अन्य वंश का, इस पर आज भी मतभेद बना हुआ है।

देवगढ़ देवालय में रामावतार से सम्बन्धित कई दृश्य हैं। रामावतार से सम्बन्धित दृश्यों में राम एवं लक्ष्मण, का धनुर्विद्या-अभ्यास, वनगमन, बालि-सुग्रीव युद्ध, समुद्र पर सेतु-निर्माण तथा मूर्छित लक्ष्मण के उपचार हेतु हनुमान द्वारा संजीवनी बूटी का लाना उल्लेखनीय है। देवगढ़ से प्राप्त कई मूर्तियाँ राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित हैं।

छत्तीसगढ़ में रायपुर से लगभग 80 किलोमीटर पूर्वोत्तर दिशा में महानदी के तट पर सिरपुर (श्रीपुर) नामक एक जगह है। यहाँ से प्राप्त पुरातात्विक उत्तखनन में केवल ईंट निर्मित मन्दिर मिला, जिसे पहले गुप्तकालीन मंदिर कहा जाता था, लेकिन स्थानीय प्रभाव के कारण अब कोसली मंदिर से प्रभावित माना जाने लगा है। यह लक्ष्मण मंदिर के रूप में विख्यात है यहाँ इष्टका निर्मित अन्य मंदिरों में राम एवं सीता के भी अलग अलग छोटे-छोटे मंदिर हैं। बादामी के चालुक्यों ने भी बहुत अधिक मूर्तियों का निर्माण करवाया था। सातवीं शताब्दी में पुलकेशिन द्वितीय द्वारा निर्मित एक मन्दिर आज भी सुरक्षित है। इस मन्दिर के दक्षिणी हिस्से में रामचरित दृश्यांकित हैं, उदाहरणार्थ- रथिका के भीतर आकारित, राम, सीता एवं हनुमान, राम,

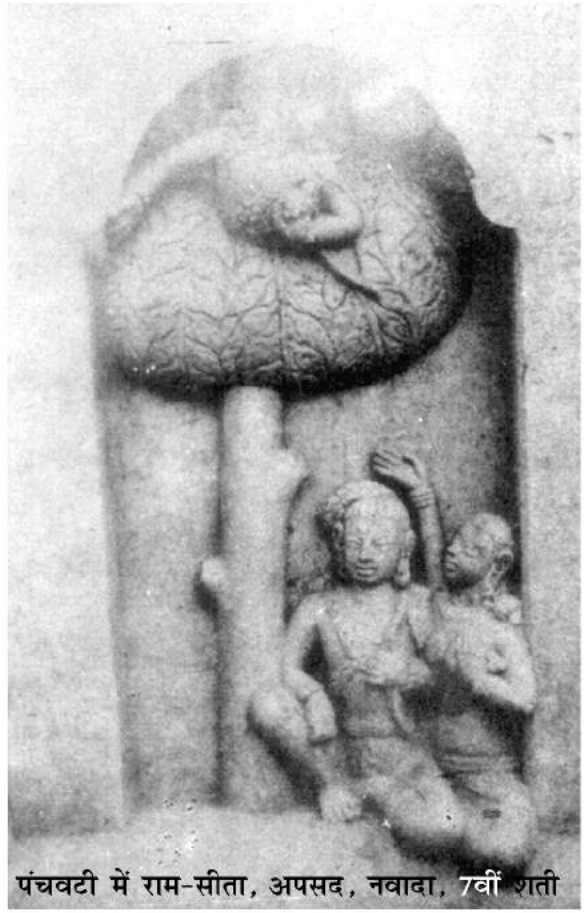
पंचवटी में राम-सीता, अपसद, नवादा, 7वीं शती

लक्ष्मण एवं चिन्तामग्न सीता (पर्णकुटी में आसीन) एक अन्य रथिका के मध्य में रूपायित हैं। विरूपाक्ष मंदिर के शैव द्राविड़ विमान का निर्माण चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्वितीय की प्रधान महिषी लोकमहादेवी ने कराया था। इस मन्दिर के स्तम्भ पर कई अंकन हैं। इन अंकनो में अन्य देवी देवताओं के साथ राम-सीता-लक्ष्मण की आकृतियाँ विद्यमान है।

राम एवं इनसे जुड़े लोगों की मूर्ति देश के विभिन्न संग्रहालय में भी सुरक्षित एवं संरक्षित हैं। यथा- राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में पाँचवी शताब्दी में निर्मित देवगढ़ से प्राप्त अहिल्या उद्धार के दृश्य में राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र की मूर्ति, पाँचवी शताब्दी में निर्मित वन में सीता, राम और लक्ष्मण की मूर्ति, प्रभास पाटन संग्रहालय में सातवीं शताब्दी में निर्मित राम (दाशरथि), कदवार की मूर्ति, चित्तौड़गढ़ में पन्द्रहवीं शताब्दी की निर्मित सुग्रीव के साथ राम, लक्ष्मण और सीता, विजयस्तम्भ। मध्यकाल तक आते आते स्थिति बदल गयी।

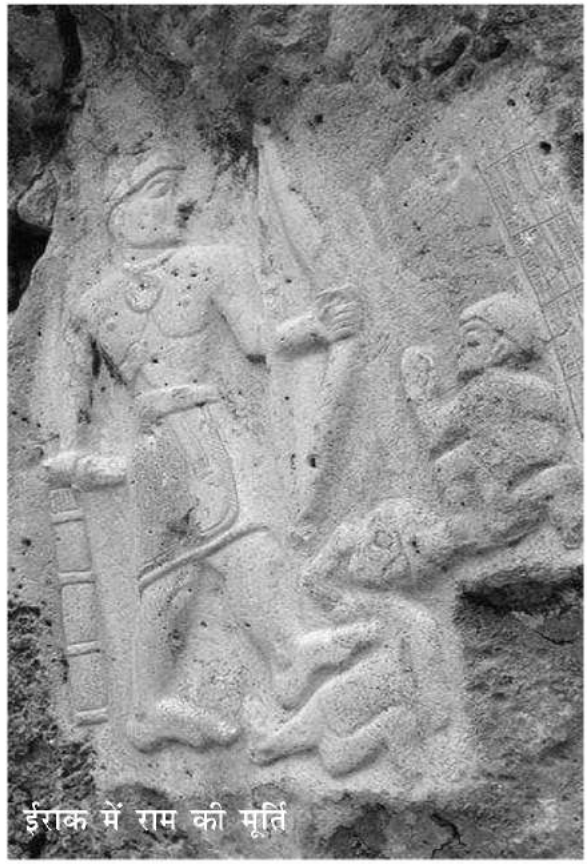
ईराक में राम की मूर्ति

हलाँकि राम की कुछ मूर्तियाँ हाल के खोज में विदेशों में पाये जाने पर पर्याप्त चर्चा हुई है। इराक में प्राप्त धनुधरी श्रीराम और हनुमान की प्रतिमा वर्षों से पुरातत्त्ववेत्ताओं और इतिहासकारों को आकृष्ट कर रही है। इस प्रतिमा का एक बड़ा चित्र सुलयमानिया म्यूजियम (सलीम स्ट्रीट, सुलयमालिया) में प्रदर्शित है और आकर्षण का केन्द्र है। विदेशी पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस प्रतिमा को अक्कडियन-साम्राज्य (2334-2154 ई. पू.) के सुमेरियन शासकों से सम्बद्ध किया है, लेकिन एक दृष्टि में यह श्रीराम और हनुमान ही प्रतीत होते हैं। यह प्रतिमा बृहत्तर भारत और सुमेर के गहरे राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों का पुष्ट प्रमाण है। लगभग 1 मीटर लम्बाई और चौड़ाई की यह विख्यात प्रतिमा इराक-ईरान सीमा पर स्थित कुर्दिस्तान जिले के सुलयमानिया नगर के दक्षिण-पश्चिम में बेलुला-दर्रे में 'होरेन शेखान' क्षेत्र के 'दरबन्द-ए-बुलला' की चट्टान पर उत्कीर्ण है। जाने-माने ब्रिटिश पुरातत्त्ववेत्ता सर चार्ल्स लिओनार्ड वूली (1880-1960) ने इराक के 'उर' क्षेत्र के

उत्खनन के दौरान इस प्रतिमा का पता लगाया था। इसका चित्र उस्मान तोफीक, सहायक व्याख्याता, कॉलेज ऑफ आर्कियोलॉजी, सुलयमानिया यूनिवर्सिटी; ओसामा एस.एम. अमीन के सौजन्य से वेबसाइट पर उपलब्ध है।

राम की अभिलिखित मूर्ति हरियाणा के नचनाखेड़ा स्थल से मिली थी, जो वर्तमान में लॉस एंजिल्स के संग्रहालय में संरक्षित है। इसके फलक पर गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में राम लिखा हुआ है।

राम की मूर्ति-विज्ञान पर इतना विवेचन करने के बाद यह भी कहा जा सकता है कि ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में राम एक प्रमुख देवता के रूप में उभड़े हैं, तथा भक्ति-आन्दोलन के बाद इनकी मूर्तियाँ व्यापक स्तर पर बनने लगी है। देवोपासना के फलस्वरूप भक्ति-सम्प्रदाय का जन्म हुआ। वैष्णव भक्ति के क्रमिक विकास को समझने के लिए वेद और पुराणों को समझने की आवश्यकता होती है। कहने के लिये कहा जाता है कि वैष्णव साधना से ही रामाश्रयी धारा का जन्म हुआ, लेकिन विश्व-साहित्य में काव्य-रचना का प्रारम्भ ही रामचरित के वर्णन से हुआ माना जाता है। मध्यकाल तक आते आते भारतीय समाज में कई कवि लेखक हुए, जिनकी प्रेरणा से राम-भक्ति धारा का विकास हुआ, जिनमें तुलसीदास, केशवदास, अग्रदास, नाभादास, सेनापति का नाम मुख्य है। इसी कालखण्ड में राम की बड़ी मूर्ति की जगह छोटी-छोटी मूर्ति बनने लगी और ठाकुरबाड़ी का निर्माण हुआ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल के बीच मर्यादा पुरुषोत्तम राम की उपलब्ध मूर्तियाँ एवं मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सम्बन्ध में ज्ञात साहित्यिक प्रमाण के साथ तादात्म्य स्थापित करते गम्भीरता के साथ शोध की आवश्यकता बनी हुई है; ताकि प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से राम के सम्बन्ध सम्पूर्णता से जानकारी मिल सके।

भास्कर भवन, जेल से पश्चिम,
शिवपुरी, बेगूसराय (बिहार)

"मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमॉयर", में फ्रेडरिक सालमन ग्राउजे ने उल्लेख किया है कि मथुरा में यमुना के किनारी अक्रूरघाट पर हर साल वैशाख शुक्ल नवमी को सीताजी के जन्मदिन के रूप में सीता-नवमी मनायी जाती है। ग्राउजे की यह पुस्तक 1883 ई. में प्रकाशित हुई थी।

युगप्रवर्त्तक महापुरुष अभिनव जयदेव विद्यापति

डॉ. शंकरदेव झा*

भारत की धरती रत्नगर्भा रही है। आदिकाल से लेकर अद्यपर्यंत यह एक से एक मनीषियों और विभूतियों को जन्म देती रही है। महापुरुषों की इसी अखिल भारतीय शृंखला में चौदहवीं शताब्दी में मिथिला में विद्यापति ठाकुर का अवतरण हुआ। राजत्व और पाण्डित्य से मण्डित मिथिला के प्रसिद्ध बिसइवार बिसफी मैथिल ब्राह्मण वंश के राजपण्डित गणपतिठाकुर के पुत्र के रूप में वर्त्तमान मधुबनी जिला के बिसफी नामक ग्राम में हुआ। विद्यापति दीर्घजीवी हुए । यद्यपि उनकी जन्म और मृत्युतिथि आज भी अनिश्चित है। तथापि कतिपय प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने इनका कालखण्ड 1350 से 1450 तक स्थिर किया है।

अपनी कौलिक परम्परा के अनुरूप विद्यापति भी मिथिला के सुप्रसिद्ध ओइनिवार राजवंश की सेवा में रहे और इस वंश को शासकों के इनका बहुमुखी सहयोग प्राप्त होता रहा । किन्तु इन ओइनिवार नृपतियों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए राजा शिवसिंहए जिनका विरुद था– रूपनारायण। राजा देवसिंह के पुत्र शिवसिंह विद्यापति के समवयस्क भी थे और घनिष्ठ बालसखा भी। शिवसिंह जितने बड़े स्वतन्त्रता प्रेमी थे उतने ही बड़े योद्ध भी थे। शिवसिंह ने दिल्ली और बंगाल के मुसलमान शासकों के साथ कई लड़ाइयाँ लड़ीं और मिथिला की स्वतन्त्रता को बरकरार रखा। शिवसिंह ने अपने राज्य का विस्तार बंगाल तक किया और अपने नाम से सिक्का भी चलाया। यद्यपि शिवसिंह का राज्यकाल अल्प रहा, मुसलमान शासकों के एक संयुक्त आक्रमण में युद्धभूमि में वे वीरगति को प्राप्त हुआ अथवा तिरोहित हो गये यह रहस्य आज भी अनसुलझा है। किन्तु अपने अल्प शासन काल में ही उन्होंने शौर्य और पराक्रम के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करबा लिया।

राज शिवसिंह जितने बड़े शूरवीर थे उतने ही बड़े कला, साहित्य और संस्कृति के प्रेमी एवं संरक्षक थे। शिवसिंह गतानुगतिकता के पक्षधर नहीं अपितु समाज के प्रत्येक क्षेत्र में लीक से टककर कुछ नये-नये प्रयोगों के प्रति आग्रही थे। शिवसिंह की तरह ही स्वतन्त्र चेतना और प्रयोगधर्मिता की गम्भीर ललक उनके बालसखा सह परमविश्वस्त परामर्शी राजपण्डित विद्यापतिठाकुर में भी थी। राजा शिवसिंह और महाकवि विद्यापति की यह जोड़ी अद्भुत थी । विद्यापति ने अपने आश्रयदाता शिवसिंह के आदेश से अनेकानेक ग्रन्थों की रचना की, अपने सैकड़ों पद बालसखा

*संपर्क : कबिलपुर, लहेरियासराय, दरभंगा-846001, मो०-8019012761, 9430639249, ई मेल- dr.Shankerdeojha@gmail.com

और उनकी राजमहिषी महारानी लखिमा को भेंट किये। राजा शिवसिंह और राजपण्डित विद्यापति के रूप में राजत्व और पाण्डित्य की इस ऐतिहासिक जोड़ी ने सामाजिक परिवर्त्तन का जो ऐतिहासिक शंखनाद आरम्भ किया उसकी अनुगूँज शताब्दियों तक सुनाई पड़ती रही। अपने आश्रयदाता और बालसखा शिवसिंह के परोक्ष हो जाने के बाद भी विद्यापति ने तमाम तरह के दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन की तीव्रता में कमी कभी नहीं आने दी। अपने बहुविध ज्ञान और अनुभव का उपयोग करते हुए उन्होंने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नव्यता का संचार करते हुए नये-नये प्रतिमान स्थापित किया जिसकी धमक सम्पूर्ण उत्तर भारत में सुनाई पड़ती रही। विद्यापति ने सामाजिक परिवर्त्तन का जो मार्ग प्रशस्त किया, मिथिला के व्यापक समाज ने उनकी चिन्तना के मर्म को समझा और उसे अंगीकार किया। कमोबेस आज भी मिथिला का समाज विद्यापति के दिखाये मार्ग पर चल रहा है।

वास्तव में विद्यापति के साथ यह विडम्बना रही है कि उनका कवि व्यक्तित्व इतना अधिक प्रभावी रहा, जिसके आगे उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्ष दब से गये। अपने समय में विद्यापति एक ऐसे विरल व्यक्तित्व हुए, जिनकी प्रतिभा बहुआयामी थी। अपने प्रत्येक क्षेत्र की प्रतिभा और ज्ञान का उपयोग उन्होंने समाज के नवनिर्माण के लिये किया। विद्यापति के विराट् सामाजिक चिन्तन का आकलन उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं के आधार पर किया जा सकता है। विद्यापति के व्यक्तित्व के इतने सारे बिन्दु हैं कि अगर उन सबका विश्लेषण किया जाय तो एक विस्तृत ग्रन्थ तैयार हो जा सकता है। लेकिन यहाँ विद्यापति के व्यक्त्वि के उन्हीं पक्षों पर संक्षेप में प्रकाश देना अपेक्षित होगा, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध मिथिला के विराट् समाज और उसके सामाजिक जीवन से रहा है।

राजपुरुष विद्यापति-

विद्यापति की वंशावली से ज्ञात होता है कि ओइनिवार राजवंश से पूर्व के कर्णाट राजवंश के समय से ही विद्यापति के पूर्वजगण राजा के सान्धिविग्रहिक, महामात्य, महामन्त्री, महामहत्तक, नैबन्धिक-जैसे उच्च पदस्थ पदाधिकारी रहे। विद्यापति भी ओइनिवारवंशी नरेश अपने बालसखा शिवसिंह और उनके उत्तराधिकारियों के समय में भी उच्च राजकीय पदों को सुशोभित करते रहे। एक राजपुरुष के रूप में विद्यापति के पूर्वजों के उनके पैतृक गाँव बिसफी पर उनका मालिकाना अधिकार था। बिसफी में उनकी अपनी राजकीय व्यवस्था एवं गढ़ इत्यादि थे। पश्चात विद्यापति के आश्रयदाता राजा शिवसिंह ने पुनः ताम्रपत्र पर लिखित एक राजकीय आदेश के द्वारा बिसफी पर विद्यापति के अधिकार का नवीकरण किया था। वस्तुतः अपने वैदुष्य एवं पाण्डित्य के बल पर विद्यापति के पूर्वजों ने जो राजकीय गरिमा हासिल की थी, उसे विद्यापति ने अपनी योग्यता से और भी अधिक गौरवान्वित किया और मिथिला के एक वरेण्य राजपुरुष के रूप में अपनी ख्याति बनायी रखी। अपनी इस प्रतिष्ठा का उपयोग विद्यापति ने मिथिला की जनता के व्यापक हित में किया। एक महाराज पण्डित और महामन्त्री के रूप में विद्यापति ने अपने आश्रयदाताओं को सत्परामर्श देकर प्रजा हित के अनेक कार्य करवाये। लोगों के हेतु पेय एवं कृषिकर्म के लिये

प्रचुर जलाशयों के निर्माता एवं नये-नये नगरों के संस्थापक के रूपमें अगर राजा शिवसिंह आज भी मिथिला में याद किये जाते हैं तो इसका श्रेय उनके लोकहित चिन्तक महामंत्री विद्यापति को जाता है।

प्रशासक पुरुष विद्यापति-

विद्यापति एक कुशल प्रशासक और पथ प्रदर्शक थे। ओइनिवार राजवंश के महामन्त्री के रूप में उन्होंने अपनी योग्यता का तो परिचय दिया ही। इससे भिन्न जब उनके बालसखा और आश्रयदाता शिवसिंह मुसलमानों से युद्ध करते हुए युद्धभूमि से ही तिरोहित हो गये और मिथिला की राजधानी गजरथपुर का पतन हो गया, उस संकट के क्षण में विद्यापति ने शिवसिंह की राजमहिषी लखिमा समेत राजपरिवार की समस्त महिलाओं को सुरक्षित रूप से वर्त्तमान में नेपालीय मिथिला स्थित रजाबनौली नामक स्थान पर पहुँचाया। मुस्लिम आक्रान्ताओं के आक्रमण से सुरक्षित रजाबनौली को मिथिला की नयी राजधानी बनाकर विद्यापति ने मिथिला की शासिका के रूप में लखिमा का राज्याभिषेक किया और बारह वर्षों तक उनके-जैसे श्रेष्ठ प्रशासक पुरुष के निर्देशन में महारानी लखिमा ने कुशलतापूर्वक मिथिला की बागडोर सम्हाली। एक प्रशासक पुरुष के रूप में विद्यापति ने अपने रजाबनौली निवास के क्रम में नवनियुक्त राजकर्मियों को ध्यान में रखकर राजकीय पत्राचार और पत्र-लेखन कला की शिक्षा से सम्बद्ध एक ग्रन्थ **लिखनावली** की रचना की। मिथिला की मध्यकालीन शासन व्यवस्था में विद्यापति रचित **लिखनावली** एक सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में मान्य रही। वस्तुतः विद्यापति प्रशासन के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों पक्ष में निपुण थे, जिसका लाभ संकट के दिनों में मिथिला को मिला।

योद्धा पुरुष विद्यापति-

1326 ई. में क्षत्रिय कर्णाट राजवंश के पतन के बाद जब ओइनिवार वंश के रूप में ब्राह्मणों ने मिथिला में राजत्व धारण किया तो फिर देश रक्षार्थ उन्होंने क्षात्रधर्म का पालन करते हुए आत्मरक्षार्थ तलवारें भी उठायीं। एक ब्राह्मण राजवंश के महामन्त्री और रणनीतिकार होने के नाते विद्यापति ने भी अवसर उपस्थित होने पर अपने आश्रयदाता के साथ कंधा से कंधा मिलाकर युद्ध में अपनी सहभागिता दी और शत्रुओं के दाँत खट्टे किये। ओइनिवारकालीन मिथिला के इतिहास का अवलोकन करने पर यह देखा जाता है कि विद्यापति की कई युद्धों में सहभागिता रही। शिवसिंह से पूर्ववर्त्ती शासक गणेश्वर की धोखे से हत्या कर असलान नामक एक मुस्लिम सरदार ने मिथिला की गद्दी पर कब्जा कर लिया। संकट के उन क्षणों में मिथिला के रणनीतिकारों ने काँटा से काँटा निकालने की नीति के तहत गणेश्वर के पुत्र कीर्त्तिसिंह के नेतृत्व में राजनयिकों की एक टोली युद्ध में सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से जौनपुर के शासक इब्राहिमशाह के पास भेजी। राजनयिकों की इस टोली में तारुण्य से युवत्व की ओर अग्रसर विद्यापति को भी शामिल किया गया था। पश्चात इब्राहिमशाह की सैन्य सहायता प्राप्त कर कीर्त्तिसिंह ने घनघोर युद्ध करते हुए मिथिला को असलान के कब्जे से मुक्त कराते हुए अपने पिता की हत्या का बदला लिया। इस युद्ध में विद्यापति ने भी अपनी ऐतिहासिक सहभागिता दी थी।

पश्चात शिवसिंह के पिता देवसिंह के शासनकाल में जब मिथिला पर गौड़ और गजनी की संयुक्त मुसलमानी सेना ने आक्रमण किया तो इस युद्ध में विद्यापति ने अपने बालसखा कुमार शिवसिंह के साथ युद्ध में भाग लेकर आक्रान्ताओं को परास्त कर उन्हें भागने के लिये मजबूर कर दिया। शिवसिंह के राजत्व काल में पुनः मिथिला पर मुसलमानों के आक्रमण हुए। इस युद्ध में अपना पक्ष कमजोर होते देख शिवसिंह ने युद्धरत अपने सखा सह महामन्त्री विद्यापति से अनुरोध किया कि वे गृहलक्ष्मी की रक्षा करें और वे स्वयं राज्यलक्ष्मी की रक्षा के लिये जूझेंगे। शिवसिंह की आज्ञा का पालन करते हुए विद्यापति राजपरिवार की महिलाओं की राजधानी से सुरक्षित निकाल कर रजाबनौली की ओर प्रस्थान कर गये और शिवसिंह का इसी युद्ध में तिरोधान हो गया।

वस्तुतः एक ब्राह्मण और शास्त्र मर्मज्ञ होते हुए भी विद्यापति ने शस्त्र उठाकर एक नयी परम्परा का श्रीगणेश किया। राष्ट्रधर्म और राजधर्म की रक्षा के लिये उन्होंने शस्त्र उठाकर समाज को यह सन्देश दिया कि राष्ट्ररक्षा का दायित्व केवल क्षत्रियों का नहीं अपितु राष्ट्र के हर नागरिक का यह कर्त्तव्य है।

कर्मकाण्डी विद्यापति-

मिथिला में अध्ययन-अध्यापन एवं विद्वत्ता की एक शाखा थी ज्ञानकाण्ड और दूसरी कर्मकाण्ड। ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत वैदिक अध्ययन के विभिन्न विषय एवं षड्दर्शन आते थे। ज्ञानकाण्ड से सम्बद्ध लोगों का सम्पर्क क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। समाज से इनका कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं होता था। इसके विपरीत कर्मकाण्ड का सम्बन्ध बृहत्तर समाज के दैनन्दिन क्रिया-कलापों, धार्मिक-राजनीतिक एवं विभिन्न लोकहित के सामाजिक कार्यों, विभिन्न संस्कारों विवादों आदि से था। विद्यापति जिस बिसइवार वंश की सन्तान थे उस वंश के सभी पुरुषों की ख्याति एक प्रकाण्ड कर्मकाण्डी के रूप में रही। विद्यापति के अध्ययन एवं विषय विशेषज्ञता का क्षेत्र भी यही कर्मकांड था। एक कर्मकाण्डी के रूप में विद्यापति ने **शैवसर्वस्वसार, गङ्गावाक्यावली, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, गयापत्तलक, वर्षकृत्य**-जैसे कतिपय ग्रन्थों की रचना की। विद्यापति के ये कर्मकाण्डीय ग्रन्थ महज चर्वित-चर्वण नहीं थे, अपितु रचयिता ने विद्वत्ता प्रदर्शन के स्थान पर सुबोध शैली में उन्हें नये सिर से प्रस्तुत किया, ताकि सामान्य लोग भी उन्हें पढ़कर समझ सकें और तदनुसार धार्मिक-सामाजिक कृत्यों का परिपालन कर सकें। विद्यापति रचित इन कर्मकाण्डीय ग्रन्थों की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने परम्परा से चले आ रहे कर्मकाण्डीय जटिलताओं को संशोधित कर उन्हें सरल बनाया। कर्मकाण्ड जनित धर्मनीति के उस युग में विद्यापति का यह सरलीकरण का प्रयोग निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक प्रयास था, जिसे व्यापक समाज की स्वीकृति प्राप्त हुई।

इतिहासकार विद्यापति-

इतिहास के लेखन एवं संचयन की दृष्टि से भी विद्यापति का योगदान अतुलनीय है। विद्यापति ने अपने से पूर्ववर्त्ती एवं अपने समकालीन इस दोनों धाराओं के इतिहास का लेखन किया। विद्यापति ने शिवसिंह की आज्ञा से **पुरुषपरीक्षा** की रचना की। बच्चों को नीतिविषयक शिक्षा देशे के उद्देश्य से रचित इस ग्रन्थ में पुरुष की परिभाषा निरूपित करने के क्रममें प्रमाण स्वरूप अनेक ऐतिह्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसमें मौर्ययुग से लेकर विद्यापति ने अपने समकालिक कई इतिहास पुरुषों से सम्बद्ध कथाओं का वर्णन किया है। पुस्तक में चाणक्य, चन्द्रगुप्त, शकटार, राक्षस, विक्रमादित्य, भोज, हम्मीरदेव, लक्ष्मणसेन, मल्लदेव, शूद्रक, जयचन्द, नरसिंह, हरसिंह आदि-जैसे राजपुरुष; शबरस्वामी, वराहमिहिर, विशाखदत्त, श्रीहर्ष, कोक, वीरेश्वर, गणेश्वर, चण्डेश्वर जैसे विद्वान एवं नीतिज्ञ पुरुषों; बोधिदास, कृष्णचैतन्य, श्रीधर-जैसे समसामयिक पुरुषों एवं शहाबुद्दीन, मुहम्मदगोरी, अल्लाउद्दीन जैसे तुर्क सुल्तानों से संबद्ध कथाएँ हैं। पुस्तक में विभिन्न ऐतिह्यों के वर्णन के क्रम में मिथिला, बंगाल, हस्तिनापुर, उज्जयिनी, कुसुमपुर, धारानगरी, योगिनीपुर, गोरखपुर, द्वारका, वाराणसी, मथुरा, अयोध्या, कांची, कौशांबी, कपिला, मेवाड़, विजयनगर, देवगिरी, आदि स्थान नामों का भी उल्लेख हुआ है। अपने समकाल में समाज को भारत एवं मिथिला का इतिहास का ज्ञान कराने के लिये **पुरुषपरीक्षा**-जैसे ग्रन्थ की रचना करनेवाले विद्यापति के स्वयं की इतिहास-दृष्टि अनोखी थी। वस्तुतः यह कृति समाज के बौद्धिक उन्नयन के प्रति विद्यापति की गम्भीर चिन्ता को रेखांकित करती है।

पूर्ववर्त्ती इतिहास के साथ-साथ विद्यापति ने अपने समकालीन मिथिला के राजनीतिक इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण घटनाओं जिनके वे द्रष्टा थे, उन्हें लिपिबद्ध कर उन्होंने **कीर्त्तिलता** एवं **कीर्त्तिपताका** शीर्षक से वीरगाथा के रूप में प्रस्तुत किया। अवहट्ठ में रचित **कीर्त्तिलता** में ओइनिवारवंशीय पुरुष कीर्त्तिसिंह के शौर्य और पराक्रम संपन्न अभियान का आँखों देखा हाल प्रस्तुत किया कि उन्होंने किस तरह मिथिला को विधर्मियों के कब्जे से मुक्त करा कर अपने पिता की हत्या का बदला लिया। **कीर्त्तिलता** में विद्यापति ने अपने वर्णन के क्रम में समकालीन समाज का यथावत् चित्र उकेरा है। हिंदुओं पर मुसलमानो के अत्याचार का जिस प्रकार से जीवंत वर्णन **कीर्त्तिलता** में हुआ है, वह आज भी रोएँ सिहरा देती है। **कीर्त्तिपताका** में शिवसिंह के पिता देवसिंह के राजत्वकाल में मिथिला पर गजनी और गौड़ की उस संयुक्त सेना द्वारा हुए हमले का वर्णन हुआ है, जिसमें शिवसिंह ने अपनी शूर-वीरता का परिचय देते हुए उन मुसलमान आक्रान्ताओं को पराजित कर उन्हें भागने के लिए विवश कर दिया था। विद्यापति ने अपने समय में घटित मिथिला के इतिहास की इन दो घटनाओं का दस्तावेजीकरण कर उन्हें भविष्य के लिये सुरक्षित कर दिया। वर्त्तमान में **कीर्त्तिलता** और **कीर्त्तिपताका** इतिहास-लेखन के प्रामाणिक स्रोत के रूप में मान्य है।

भूगोलवेत्ता विद्यापति-

विद्यापति के भूगोल बोध का परिचय उनकी संस्कृत कृति **भूपरिक्रमण** से प्राप्त होता है। अपने आश्रयदाता शिवसिंह के पिता देवसिंह के साथ विद्यापति ने नैमिषारण्य से मिथिला तक की यात्रा की थी। इस क्रम में दोनों ने छप्पन स्थानों की यात्रा की। विद्यापति ने अपने ग्रन्थ में सभी छप्पन स्थानों की ऐतिहासिकता, धार्मिकता, पौराणिकता एवं समसामयिक स्थिति का आँखों देखा वर्णन किया है। इसमें एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी को भी विद्यापति ने निर्धारित किया है। भूगोल और इतिहास दोनों ही दृष्टिओं से महत्त्वपूर्ण इस ग्रन्थ की उपादेयता वर्त्तमान समय में और अधिक बढ़ जाती है। यात्रा-वर्णन के रूप में भारत के भूगोल को लिपिबद्ध करना वस्तुतः विद्यापति के व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है कि किस प्रकार उन्होंने अपने समय की उन जिज्ञासाओं को ध्यान में रखते हुए भारत का एक यात्रा-चित्र प्रस्तुत किया, जिस जमाने में यात्रा करना एक दुष्कर कार्य था। स्वयं भ्रमण के द्वारा भारत के भूगोल का ज्ञान प्राप्त कर विद्यापति ने अपनी लेखनी से मिथिला के ज्ञान पिपासुओं को भारत का दर्शन कराकर मैथिलों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ते हुए उन्हें देश की भौगोलिक विविधताओं के बीच राष्ट्रीय एकात्मकता की अंतःसलिला से परिचय कराया।

राजनीतिक चिन्तक विद्यापति-

मिथिला में राजनीति शास्त्र विषयक चिन्तन एवं ग्रन्थलेखन की भी अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा रही है। विद्यापति के पितामह-भ्राता चण्डेश्वर रचित **राजनीति-रत्नाकर** नामक ग्रन्थ की जो प्रसिद्धि है उस परम्परा को देखते हुए इस अनुमान को बल मिलता है कि विद्यापति ने भी राजनीतिक चिन्तन विषयक किसी ग्रन्थ की रचना निश्चित रूप से की थी, जो अभी तक अप्राप्य हैं। विद्यापति के स्वरचित राजनीतिशास्त्र विषयक ग्रन्थ भले ही अब तक न मिले हों तथापि उनकी राजनीतिक चिन्तना की पुष्टि उनके अन्य दूसरे-दूसरे ग्रन्थों से होती है। **पुरुषपरीक्षा** की 'अलस कथा' में जिस प्रकार से राज्य के प्रमुख दायित्वों के रूप में शारीरिक दृष्टि से अक्षम लोगों के भरण-पोषण के दायित्व को राज्य के प्रमुख दायित्व के रूपमें परिगणित करते हुए इस बात का भी ध्यान रखने को कहा गया है कि गलत लोग न कहीं इस राजकीय सुविधा का लाभ उठा लें, यह राजकीय कर्त्तव्य वर्त्तमान में भी उतना ही प्रासंगिक है। लेकिन इस राजकीय कर्त्तव्य का दुरुपयोग जिस प्रकार से वर्त्तमान में वोट बैंक बनाने के लिये किया जा रहा है, वह विद्यापति के राजनीतिक चिन्तन के आलोक में राजनीतिक पतनशीलता को प्रतिबिम्बित करते हैं।

विद्यापति के निगूढ़ राजनीतिक चिन्तन का अवक्षेपण उनके विधि विषयक ग्रन्थ **विभागसार** में राज्य की अविभाग्यता के सिद्धान्त के प्रतिपादन के रूप में हुआ है। सम्भवतः अपने आश्रयदाता ओइनिवार राजवंश के भीतर उपजे किसी आन्तरिक कलह के परिप्रेक्ष्य में विद्यापति ने राज्य को किसी की निजी सम्पत्ति न मानकर उसे सामान्य दायभाग से सर्वथा अलग रखते हुए उसे सर्वथा अविभाज्य कहा है, जिसका किसी भी कीमत पर बँटवारा नहीं किया जा सकता है। विद्यापति द्वारा अपने समय में दी गयी इस राजनीतिक व्यवस्था का ही परिणाम रहा है कि ओइनिवार काल से

लेकर उसके परवर्त्ती खण्डवला राजवंश के समय तक कभी मिथिला का विभाजन पारिवारिक सम्पत्ति के रूप में नहीं किया गया। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक मिथिला ने एक राजकीय इकाई के तौर पर अपनी पहचान सुरक्षित रखी। विद्यापति के इस राजनीतिक चिन्तन की प्रासंगिकता इस सनातन भारतवर्ष के सन्दर्भ में भी रही है कि विभिन्न प्रकार की विविधताओं के बावजूद भी राष्ट्र की एकता और अखण्डता सदैव सुरक्षित रही है। विद्यापति के राजनीतिक चिन्तन की झलक **लिखनावली** सहित उनकी अन्य कृतियों में भी यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं। इस प्रकार एक राजनीतिक चिन्तक के रूप में विद्यापति के अवदान चिरकालिक एवं चिर प्रासंगिक है।

विधिवेत्ता विद्यापति-

विद्यापति कर्मकाण्ड की एक शाखा विधि अथवा धर्मशास्त्र के भी महान अध्येता एवं व्याख्याकार थे। विभिन्न प्रकार के सामाजिक विवादों में एक प्रमुख विवाद था सम्पत्ति का विभाजन, जिसे विधि की भाषा में **दायभाग** कहा गया है। विद्यापति से पूर्व के विधिप्रदातागण विवाद के महज एक विषय के रूप में इसे व्याख्यायित करते रहे। लेकिन विद्यापति ने सर्वप्रथम दाय को एक स्वतन्त्र विषय के रूपमें स्थापित करते हुए विधि विषयक ग्रन्थ **विभागसार** की रचना की। इस ग्रन्थ में सम्पत्ति विभाजन के सन्दर्भ मे सूक्ष्म से सूक्ष्मतम पहलूओं पर विचार किया है । वहीं ग्रन्थ में **स्त्रीधन** नामक एक स्वतन्त्र अध्याय में स्त्रीधन की विवेचना क्रम में उसे अविभाज्य मानते हुए विद्यापति ने अपने समय में समाज में नारी के उस अधिकार को वैधानिक मान्यता प्रदान की जिसके लिये वर्त्तमान काल में सरकार ओ अनेक कानून बनाने पर रहे हैं।

वस्तुतः एक विधिवेता के रूपमें विद्यापति लिखित ग्रन्थ **विभागसार** का प्रथम उद्देश्य था सम्पत्ति विभाजन-जैसे जटिल विवादों का वैधानिक समाधान प्रस्तुत कर कलह रहित समाज की स्थापना करना। दूसरा किसी न्यायालय एवं धर्मशास्त्रियों का आश्रय लिये वगैर इस पुस्तक की सहायता से सामाजिक स्तर पर भी सम्पत्तिजन्य विवाद का शास्त्रोचित समाधान निकाल लेना।

पुराणवेत्ता विद्यापति-

भारत की आध्यात्मिक परम्परा के एक सशक्त आधार रहे हैं अठारहों पुराण एवं उपपुराण। विद्यापति ने सभी पुराणों का गम्भीर अध्ययन किया था और उन पुराणों के आधार पर एक गवेषक की भाँति कई ग्रन्थों की रचना की। विद्यापति ने **शैवसर्वस्वसार** नाम स्मृति ग्रन्थ की रचना विभिन्न पुराणों के आधार पर की। विद्यापति स्वयं शिवभक्त थे एवं मिथिला निवासियों की शिव के प्रति सदैव से विशेष आस्था रही है। अतः लोकप्रयोजन को देखते हुए विद्यापति ने विभिन्न पुराणों के आधार पर शिव-पूजन विषयक विभिन्न कृत्यों एवं विधि-विधानों को अपनी व्याख्या के साथ सिलसिलेवार ढंग से वर्णित किया है। पुराणों आधारित विद्यापति की दूसरी कृति है– **शैवसर्वस्वसारप्रमाणभूतसंग्रहः**। इसमें विभिन्न पुराणों में वर्णित शिवविषयक वचनों को संयोजित किया गया है। गवेषणा की वर्त्तमान पद्धति के संदर्भ में देखा जाय तो विद्यापति रचित उपर्युक्त

दोनों ग्रन्थ शोध एवं गवेषणा के एक मानदण्ड सरीखे दिखते हैं। पुराणों के गम्भीर अध्ययन के बाद ही विद्यापति के द्वारा इन दोनों ग्रन्थों की रचना सम्भव हुई होगी। पुराण आधारित शिवविषय उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के आधार पर इस सम्भावना को भी बल मिलता है कि विद्यापति ने विष्णु एवं शक्ति-पूजन विषयक ग्रन्थों की भी रचना की होगी। इसी श्रेणी में विद्यापति महापुराण के रूप में प्रसिद्ध सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत की भी अपने हाथों से प्रतिलिपि की थी, जिसकी पाण्डुलिपि दुर्भाग्यवश चोरी चली गयी।

नीतिकार विद्यापति-

यद्यपि भर्त्तृहरि, कामन्दक, शुक, चाणक्य की तरह विद्यापति रचित कोई नीतिविषयक कृति अलग से नहीं मिलती है, लेकिन विद्यापति नीतिकार थे और अपने जीवन के विराट् अनुभवों को उन्होंने अपने विभिन्न ग्रन्थों में सूक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया है। विद्यापति की **पुरुषपरीक्षा** का उद्देश्य ही बच्चों को नैतिक विषयक शिक्षा प्रदान करना निर्धारित किया गया है। किन्तु नीतिग्रन्थ-विषयक कथाओं वे बीच विद्यापति ने अनेक नीतिपरक छोटे-छोटे श्लोकों का प्रयोग किया है जो आज भी समाज को सही और गलत का ज्ञान कराने की दृष्टि से प्रासंगिक हैं। विद्यापति के अवहट्ठ ग्रन्थों एवं मैथिली पदावलियों में भी नीतियों की भरमार देखने को मिलती हैं। **कीर्त्तिलता** में विद्यापति ने पुरुषार्थ को विश्लेषित करते हुए कहा है-

मान विहूना भोजना सत्तु समप्पिअ राज।
शरण पइट्ठे जीअना, तीनू काअर काज॥

अर्थात् जो पुरुषार्थी एवं स्वाभिमानी होते हैं वे अपमान के साथ दिया गया भोजन, शत्रु द्वारा दयापूर्वक प्रदान की गयी सत्ता एवं शरणागत जीवन कभी स्वीकार नहीं करते हैं। जो कायर होते हैं वही इन तीनों को स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः विद्यापति ने अपने विभिन्न ग्रन्थों एवं पदावलियों में नीतिवचनों को पिरोकर मिथिला के समाज को युग और जीवन के कटु सत्यों से परिचय कराते हुए उन्हें पुरुषार्थी बनने को प्रेरित किया। विद्यापति के नीति वचनों को अगर एक जगह संकलित किया जाय तो वे **शुक्रनीतिसार** एवं **चाणक्यनीतिदर्पण** से कम महत्त्व के नहीं होंगें।

बहुभाषाविद् विद्यापति-

विद्यापति कई भाषाओं के जानकार थे। विद्यापति के समकाल में मिथिला में कम से कम चार भाषाओं का कमोबेस प्रचलन था। ये चारों भाषाएँ क्रमशः संस्कृत, प्राकृत, अवहट्ठ एवं देसिल बयना अर्थात् मैथिली थीं। इसका उल्लेख विद्यापति ने **कीर्त्तिलता** में निम्न प्रकार से किया है-

सक्कय बानी बहुअ न भावे पाउस रस को मम्म न पाबे।
देसिल बयना सब जन मिट्ठा ते तइसन जम्पओ अवहट्ठा॥

विद्यापति ने अपनी इस उक्ति मे स्पष्ट कर दिया है कि संस्कृत भाषा को जाननेवाले लोग

कम हैं। प्राकृत के मर्म को भी लोग समझने में समर्थ नहीं हैं। अवहट्ठ की भी स्थिति कमोबेस ऐसी ही है जिसमें मधुर भाव की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती है। लेकिन देसिल बयना अर्थात मैथिली सबों को मीठी लगती है।

विद्यापति ने उपर्युक्त चारों भाषाओं में रचना की। चूँकि उनके समय में ज्ञान-विज्ञान एवं शासन-प्रशासन की भाषा संस्कृत थी। अत: तद्विषयक समस्त ग्रंथों की रचना उन्होंने संस्कृत में की और अपने समकालीन पंडित समाज के साथ-साथ पश्चात भी समादृत होते रहे। प्राकृत में परंपरा निर्वाह के तौर पर अल्प रचना की। भरत ने अपने **नाट्यशास्त्र** में स्त्री तथा अधम पात्रों की संवाद भाषा के रूप में नाटकों में प्राकृत के प्रयोग का निर्देश किया है। अत: उस परंपरा का निर्वाह उन्होंने अपनी कीर्त्तनियाँ नाटक **गोरक्षविजय** एवं संस्कृत नाटिका **मणिमंजरी** में प्राकृत का प्रयोग किया वीर रस के किसी वस्तु को मैथिली जैसी मधुर भाषा में अभिव्यक्त करने में कठिनता थी। अत: विद्यापति ने अपनी **कीर्त्तिलता** एवं **कीर्त्तिपताका**-जैसे वीर रस परक काव्यों की रचना अवहट्ठ में की जो पूर्ववर्त्ती मैथिली कही जाती है। लेकिन विद्यापति अपने जिन गीतों के कारण विश्व में जाने जाते हैं उनकी रचना उन्होंने सर्वजन प्रिय मधुर भाषा मैथिली में की। इन चारों भाषाओं से इतर विद्यापति ने बंगाल, असम, उड़ीसा, नेपाल-जैसे पार्श्ववर्त्ती प्रान्त के लोगों की रुचियों को भी ध्यान में रखा। पूर्वांचल के इन क्षेत्रों मे सम्पर्क भाषा के तौर पर मैथिली के एक कृत्रिम रूप का प्रचलन था जिसे विद्वानों ने ब्रजबुली का अभिधान दिया है। विद्यापति ने मैथिली की इस उपभाषा में भी गीतों की रचना की। पश्चात संपूर्ण पूर्वांचल में साहित्य रचना की भाषा यही ब्रजबुली बनी।

इस प्रकार बहुभाषाविद् विद्यापति ने एक तरफ संस्कृत की शास्त्रीय गरिमा बनाये रखी तो प्राकृत एवं अवहट्ट-जैसी लुप्त प्राय भाषाओं को परम्परा के तौर पर बचाकर रखने की कोशिश की और लोकरुचि का ध्यान रखते हुए देसिल बयना को अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति का मुख्य आधार बनाते हुए मैथिल समाज में एक भाषिक-समन्वय की प्रवृत्ति को विकसित करने की चेष्टा की।

भाषा कविता भगीरथ विद्यापति-

यद्यपि विद्यापति के आविर्भाव से पूर्व ही मिथिला में देसिल बयना अर्थात् मैथिली में गद्य और पद्यरचना की परम्परा विकसित हो चुकी थी किन्तु वैदिक विद्या एवं दर्शन की भूमि मिथिला में तब तक देशभाषा में रचना को प्रतिष्ठा का विषय नहीं माना जाता था। तर्क एवं शास्त्रार्थ के लिये प्रसिद्ध मिथिला में वैसे भी कविकर्म को अच्छा नहीं माना जाता था । उसमें भी देशभाषा में रचना करने वालों को तो और भी उपहास की नजरों से देखा जाता था ।

संस्कृत भाषा आमलोगों के लिये बोधगम्य नहीं रह गयी थी और देशभाषा में रचना करना एक गुनाह के समान था। इसके कारण मिथिला की साहित्यिक परम्परा में भाषा को लेकर एक गत्यावरोध जैसा उत्पन्न हो चला था। देश भाषा में रचित सुमधुर गीतों के अभाव मे मिथिला का

रंगमंच एवं संगीत दोनों की स्थिति मानों एक ठहरे हुए पानी के समान हो चली थी। विद्यापति ने सर्वप्रथम इस गतिरोध को तोड़ने का साहस किया एवं पंडित वर्ग के उपहास की परवाह न करते हुए मैथिली में श्रृंगार एवं भक्ति समेत लोक प्रयोज्य गीतों की गंगा बहा दी । विद्यापति की यह ललित कोमलकांत पदावली ने लोकप्रियता के सारे प्रतिमान तोड़ डाले। पूर्व में बंगाल, असम, उड़ीसा, नेपाल से लेकर पश्चिम में जौनपुर, ब्रज की गलियों और दिल्ली के राजपथ पर्यंत विद्यापति के गीत गूंजने लगे। नगर के गुणी, गायक, नर्त्तक, अभिनेता, रसिक प्रबुद्ध जन से लेकर ग्राम के अनपढ़ किसान, मजदूर, हलबाहों, चरबाहों के कंठ में जाकर ये गीत रच-बस गये। नगर ललनाओं से लेकर ग्राम्य वनिताओं तक विद्यापति के गीत प्रसारित हो उठे। राजदरबार से लेकर गाँव कें चौपालों, खेत-खलिहानों और अमराइयों तक सर्वत्र विद्यापति के गीतों का डंका बजने लगा।

विद्यापति रचित सुमधुर मैथिली गीतों की अपार लोकप्रियता ने उन लोगों को प्रोत्साहित किया जो देशभाषा में रचना करने में संकोच का अनुभव करते थे। विद्यापति का अनुसरण करते हुए मिथिला समेत समस्त पूर्वांचल में भाषा-गीत रचना की एक लहर सी चल पड़ी। यह विद्यापति के प्रयोग का ही परिणाम था कि मध्यकाल में भक्ति आंदोलन में संस्कृत के स्थान पर लोकभाषा को प्रतिष्ठापित किया गया। ब्रज के सूर, अवध के तुलसी, राजस्थान की मीरा को लोकभाषा में रचना करने की प्रेरणा विद्यापति से ही प्राप्त हुई। इस प्रकार विद्यापति ने मध्यकाल में सामान्य जनसमुदाय की अपेक्षाओं के अनुरूप लोकभाषा मैथिली को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान कर साहित्य के एक नये युग की आधारशिला रखी, जिसके कारण उन्हें लोकभाषा भगीरथ का गौरव प्राप्त हुआ।

नाट्यविद् विद्यापति-

विद्यापति एक श्रेष्ठ नाट्यविद् और प्रयोगकर्त्ता थे। विद्यापति से पूर्व ही मिथिला का भाषा-रंगमंच अस्तित्व में आ गया था लेकिन कई कारणों से वह मन्थर गति से आगे बढ़ रहा था। इस रंगमंच की मिथिलता का एक कारण था कि मिथिला के नाटकों में गद्य संवाद संस्कृत एवं प्राकृत के होते थे किन्तु गीत के रूप में मैथिली इन नाटकों की आधार-भाषा थी । मैथिली गीत ही भाषा-रंगमंच की लोकप्रियता के हेतु थे किंतु विद्यापति के आविर्भाव से पूर्व मैथिली में पर्याप्त मात्रा में उस प्रकार के ललित सुमधुर गीतों का अभाव था जिनका प्रयोग नाटकों में किया जा सकता था। रंगमंच की शिथिलता का दूसरा कारण था नाटकों के पूर्वरंग का वह दीर्घ नाटकीय तामझाम जो प्रेक्षकों को उकता देता था।

विद्यापति ने भाषा-रंगमंच हेतु उपयुक्त गीतों के अभाव को देखते हुए राधा-कृष्ण एवं शिव-पार्वती लीला विलास तथा अन्य विषयों से संबद्ध असंख्य गीतों की रचना की। विद्यापति के गीतों के कारण नाट्य प्रयोक्ताओं को मानों खजाना-सा मिल गया और प्रयोजनानुसार संस्कृत-प्राकृत गद्यसंवाद वाले नाटकों में विद्यापति के गीत योजित किये जाने लगे। फलतः मिथिला के भाषा-रंगमंच को मानों पर लग गये। वहीं विद्यापति ने नाट्कों के पूर्वरंग की दीर्घता को अत्यंत संक्षिप्त कर दिया और अपने इस प्रयोग को उन्होंने अपनी **गोरक्षविजय** नाटक के माध्यम

से प्रेक्षकों के समक्ष रखा जिसे लोगों ने पसंद किया और उसके बाद से यही परम्परा चल पड़ी।

विद्यापति ने शिव-पार्वती एवं राधा-कृष्ण लीला विषयक कई भाषा नाटकों की रचना की जो अब अप्राप्य हैं किंतु उनके नाटकों का अनुकरण शताब्दियों तक होता रहा। मिथिला के पूर्वी भाग में आज भी विद्यापति द्वारा निरूपित भाषा-रंगमंच की परंपरा जीवन्त है जो उन्हीं के नामपर विदापति नाम से जानी जाती है।

अपनी प्रयोगधर्मिता के लिये ख्यात नाट्यविद् विद्यापति ने कई प्रेक्षणीय कला रूपों को भी जन्म दिया एवं कई पारंपरिक प्रेक्षणीय कला में सुधार भी किये। विशुद्ध आध्यात्मिक मनोरंजन हेतु उन्होंने नृत्यनाटिका की एक नयी शैली विकसित की जिनमें अपने आराध्य देव की कथाओं का कीर्त्तन किया जाता था। विद्यापति द्वारा निरूपित यह नृत्यनाटिका शैली कीर्त्तनियाँ के नाम से प्रसिद्ध हुई। विद्यापति ने कथक ओर भाट जैसी प्रदर्शनीय प्रस्तुतियों में भी नये तत्व जोड़कर उन्हें भाषा गीतों से सजाया। इस प्रकार विद्यापति ने मिथिला के रंगमंच को गीत के रूप में नये उपादान प्रदान कर एवं अपने नये-नये प्रयोंगों द्वारा समृद्ध किया जिसके कारण इस रंगमंच की ख्याति समस्त पूर्वांचल में व्याप्त हो सकी।

संगीतविद् विद्यापति-

मिथिला के संगीत के क्षेत्र मे विद्यापति ने कई अनोखे प्रयोग किये। अपने आश्रयदाता एवं मित्र राजा शिवसिंह के आग्रह पर विद्यापति ने दरबारी कथक गायक जयत के सहयोग से मिथिला के उस मार्गी संगीत का देशीकरण किया जो अपनी गहन शास्त्रीयता के कारण आमलोगों से क्रमशः दूर होती जा रही थी। विद्यापति ने मिथिला की मार्गी संगीत परंपरा को देशी संगीत के व्याकरण में ढाल दिया। मार्गी संगीत में लयकारी की प्रधानता थी गीतों की नहीं। लेकिन देशी संगीत में गीतों की प्रधानता थी। विद्यापति ने मार्गी संगीत के देशी संगीत की पद्धति के अनुरूप विभिन्न रागों को गीतों का अनुवर्त्ती बना डाला एवं विभिन्न रागों में गायन हेतु सुमधुर पदों की रचना की। विद्यापति के इस प्रयोग से मिथिला में शास्त्रीय संगीत की परिपाटी का पूर्णतः देशीकरण हो गया। यहाँ रागों के नाम तो वही रह गये जो अन्य स्थानों में थे लेकिन मिथिलामें उनकी गायन शैली सर्वथा बदल गयी। इस प्रकार विद्यापति के इस सांगीतिक प्रयोग के कारण दाक्षिणात्य और हिंदुस्तानी संगीत के समानांतर संगीत की एक तीसरी क्षेत्रीय शैली स्थापित हुई जो मिथिला या तिरहुत संगीत के नाम से ख्यात हुई मिथिला की शास्त्रीय संगीत परंपरा में किये गये इस प्रयोग एवं विद्यापति रचित भाव संपन्न सुमधुर गीतों का सान्निध्य प्राप्त होने के कारण मिथिला संगीत की लोकप्रियता में चार चांद लगा गये। विद्यापति निरूपित संगीत की यह धारा उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक मिथिला में प्रवहमान रही। विद्यापति के अवसान के दो सौ वर्षों बाद सत्रहवीं शताब्दी में लोचन नामक संगीतविद ने उनके द्वारा निरूपित संगीत पद्धति को एकत्र कर रागतरंगिणी नामक ग्रंथ की रचना की। इस प्रकार संगीत के क्षेत्र में भी विद्यापति का अवदान ऐतिहासिक है।

सर्वपन्थसमभाव के उद्घोषक विद्यापति-

मध्यकाल में संपूर्ण भारत में भक्ति आन्दोलन की एक तीव्र लहर उठी। लेकिन इस लहर में भी बहुत सारे सगुण-निर्गुण, वैष्णव, शाक्त-शैव आदि-जैसे पन्थ, सम्प्रदाय एवं मत के स्तर पर मतभेद और अन्तर्विरोध थे। मिथिला में आकर भक्ति आन्दोलन की ये सभी परस्पर विरोधी धाराएँ एकाकार हो चलीं, तो इसका कारण था मिथिला की पंचदेवोपासना की परम्परा। इस पंचदेवोपासना को भक्ति आन्दोलन के साथ समन्वित करने का श्रेय अगर मिथिला में किसी एक महापुरुष को जाता है तो वह थे विद्यापति। विद्यापति ने भक्ति आन्दोलन की सभी धाराओं को समन्वित कर अपनी लेखनी से सर्वपन्थसमभाव का शंखनाद किया। विद्यापति की धार्मिक आस्था को लेकर अन्यदेशीय विद्वानों में आज भी मतभेद हैं। कोई उन्हें वैष्णव मानता है, तो कोई उन्हें शैव, तो कोई उन्हें शाक्त। अगर कोई विद्यापति के केवल निर्वेद-विषयक पदों का अध्ययन करे, तो उसकी धारणा यह भी बन जा सकती है कि वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। वस्तुतः विद्यापति एक ही साथ शैव, वैष्णव, शाक्त सब कुछ थे। उन्होंने न केवल विभिन्न देवी-देवताओं की भक्ति में असंख्य पदों की रचना की अपितु सम्प्रदाय के स्तर पर एक-दूसरे के विरोधी भक्ति धाराओं के बीच समन्वय और अभेद भी स्थापित किया। **"भल हर भल हरि भल तुअ कला, खन पितवसन खनहि बघछला"** जैसे भक्ति गीत की रचनाकर शिव और विष्णु को एक ही ईश्वर का दो भिन्न-भिन्न रूप बताया। इसी प्रकार वैष्णव, शैव और शाक्त मतों के बीच की एकात्मकता को दरसाने के लिये उन्होंने **"विदिता देवी सकल विदित हो अविरल केस सोहन्ती, एकानेक सहस को धारिणी जनि रंगा पुर नटी"** जैसे भक्ति गीत की रचना कर शक्ति के विभिन्न रूपों को विभिन्न पन्थाधारित पुरुष देवताओं की अर्द्धांगिणी के रूप में उपस्थित कर सबको एकाकार कर डाला।

वस्तुतः विद्यापति का भक्ति दर्शन विभेदकारी संकीर्ण पन्थवादी न होकर मिथिला की परम्परा के अनुरूप बुद्धि और तर्क पर आधारित समन्यवादी था जिसमे पन्थगत कट्टरता और पलायन के लिये कोई स्थान नहीं था, अपितु गार्हस्थ्य जीवन की मर्यादा में रहकर अपने सामाजिक दायित्वों का परिपालन करते हुए समान भाव से ईश्वर के विविध रूपों की अर्चना-उपासना करने का संदेश निहित था।

यह विद्यापति का ही प्रभाव था कि भारत के विभिन्न भागों से उठ रहे पन्थगत भक्ति आन्दोलनों की किसी भी धारा को मिथिला में अपना पैर जमाने का अवसर नहीं प्राप्त हो सका और न ही संन्यास जीवन को यहाँ पनपने का मौका मिला। विद्यापति के समन्वयवादी भक्ति-दर्शन का प्रभाव मिथिला पर शताब्दियों तक इस प्रकार रहा कि अगर शैव, वैष्णव, रामोपासक, कृष्णोपासक जैसे भक्ति मतों का किंचित् प्रवेश मिथिला में हुआ भी तो शीघ्र ही उन्हें पन्थगत कट्टरता का परित्याग करते हुए मिथिला की पंचदेवोपासना परक समन्वयवादी भक्तिदर्शन के रंग में रंग जाना पड़ा। मिथिला की धार्मिक परम्परा आज भी विद्यापति के भक्ति दर्शन का अनुकरण कर रही है। मिथिला के लोग आज भी एक साथ शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और गाणपत्य हैं।

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धाचार्य विद्यापति-

देसिल बयना में रचित विद्यापति की पदावली का एक विशिष्ट विषय विभाग है राधा-कृष्ण की प्रेम लीला। जयदेव ने अपने **गीतगोविन्द** में राधा और कृष्ण की जिस रास-विलास का अंकन किया उसे विद्यापति ने विस्तार देकर चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। विद्यापति की राधा-कृष्ण विषयक पदावली पर जयदेव के इस प्रभाव के कारण वे 'अभिनव जयदेव' के नाम से अपनी जीवितवस्था में ही ख्यात हो गये। राधा के प्रेमोन्मादिनी स्वरूप के अंकन के क्रम में विद्यापति ने संयोग, वियोग, मान, विरह, अभिसार आदि विभिन्न स्थितियों का जो जीवंत चित्रण अपने पदों में किया वह काव्य रसिकों के हृदय की गहराइयों में उतरता चला गया। नाट्य मंडलियों के साथ विद्यापति के राधा-कृष्ण विषयक ये शृंगारिक पद जब बंगाल पहुँचे तो गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के प्रवर्त्तक चैतन्य इन्हें सुनकर आनंद से मूर्च्छित हो उठे। कृष्ण के प्रेम में बावली बनी राधा की विकलता में उन्हें इस भक्त के दर्शन हुए जो अपने आराध्य को पाने के लिये पागल बना रहता है। विद्यापति के इन शृंगारिक पदों ने चैतन्य को भक्ति दर्शन की एक नयी प्रेरणा प्रदान की। वह था राधा भाव का दर्शन। अर्थात् स्वयं में राधा की अनुभूति कर कृष्ण के प्रति सर्वस्व समर्पण का भाव। फलतः विद्यापति के शृंगारिक पद चैतन्य और उनके अनुयायियों के लिये पवित्र कीर्त्तन बन गये। चैतन्य प्रवर्त्तित कृष्णाश्रयी गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में विद्यापति के शृंगारिक पदों को एक पन्थगत धार्मिक पुस्तक की मान्यता प्राप्त हो गयी। इस प्रकार विद्यापति स्वतः गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के आद्य सिद्धाचार्य के पद पर आसीन कर दिये गये। विद्यापति के पदों ने जिस प्रकार से चैतन्य को भक्ति के एक नये मार्ग से परिचय कराया और कालक्रम में सम्पूर्ण बंगाल इस चैतन्य मत के प्रभाव में आ गया उसके कारण आम बंगालियों में यह धारणा बन गयी कि विद्यापति परम वैष्णव पुरुष थे।

समाज सुधारक विद्यापति-

इतिहास के प्रत्येक कालखण्ड में सामाजिक व्याधियों से लड़नेवाले समाज सुधारकों का अभ्युदय होता रहा है। विभिन्न क्षेत्रों को अपने अवदानों से समृद्ध करनेवाले विद्यापति एक सशक्त समाज-सुधारक भी थे। अपनी लेखनी का उपयोग उन्होंने विभिन्न सामाजिक व्याधियों से लड़ने के लिये भी किया। मिथिला की सामाजिक व्याधियों में एक बड़ी व्याधि थी अनमेल विवाह। मिथिला के सवर्णों में अगर वृद्ध वर के साथ बालिकाओं का विवाह करा दिया जाता था तो विद्यापति ने इसके विरुद्ध में शिव-पार्वती के अनमेल विवाह के बहाने **"हम नहि आजु रहब एहि आँगन जओं बुढ़ होएता जमाय"** जैसे गीत की रचना की तो असवर्णों में डंडे से नापकर बहुधा वयस्का कन्याओं का विवाह अपनी उमर से छोटे अपरिपक्व लड़कों से करा दी जाती थी। यह भी अनमेल विवाह का एक विकृत रूप था। विद्यापति ने अनमेल विवाह की इस प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए लिखा- **"पिया मोर बालक हम तरुणी गे कोन तप चुकलहुँ भेलहुँ जननी गे।"**

विद्यापति ने मिथिलावासियों को कर्मवादी, स्वाभिमानी और पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा दी।

विद्यापति के हरगौरी पदावली के नायक शिव और नायिका पार्वती के कष्टपूर्ण, अभावग्रस्त दाम्पत्यजीवन के वर्णन के बहाने उन्होंने पुरुषों की दायित्वहीनता, अकर्मण्यता, भिक्षाटन पद्धति, भंग प्रेम असंयमित और असभ्य जीवन शैली आदि जैसे दुर्गुणों पर कठोर प्रहार करते हुए उन्हें कर्मवादी बनने को प्रेरित किया। अपने आराध्य शिव को उन्होंने एक आदर्श पुरुष के रूप में उपस्थापित किया। एक खुशहाल दांपत्य जीवन और परिवार के लिये उन्होंने कृषिकर्म को विशेष मर्यादा प्रदान की।

विद्यापति ने अपनी लेखनी से मिथिलावासियों को किसी भी प्रकार की धार्मिक कट्टरता से दूर रहने को प्रेरित किया। मिथिला की सनातन धार्मिक परम्परा में किसी भी प्रकार की संकीर्णता उन्हें सह्य नहीं थी। अतः मिथिला के बाहर उठ रहे भक्ति आन्दोलनों के उस दौर में विद्यापति ने मैथिलों को किसी विशेष पन्थ, मत, सम्प्रदाय आदि का अनुगामी होकर आस्थागत विवाद में पड़ने से बचाने के लिये सर्वपन्थसमभाव की भावना अपनी लेखनी से विकसित की। फलतः प्रबल भक्ति आन्दोलन के इस काल में भी विद्यापति के कारण मिथिला की सनातन धार्मिक संस्कृति सुरक्षित बची रह सकी।

मिथकीय पुरुष विद्यापति-

विद्यापति के विराट व्यक्तित्व का प्रभाव जनमानस पर इस प्रकार पड़ा कि अपने जीवन काल मे ही विद्यापति एक मिथकीय महापुरुष बन गये। लोगों की दृष्टि में विद्यापति का स्थान भगवान से भी ऊपर हो चला। किंवदन्ती है कि विद्यापति की भक्ति से प्रसन्न होकर शिव अपने भक्त के प्रति इस कदर वशीभूत हो चले कि उगना नाम से वे उनके सेवक बनकर उनके साथ रहने लगे। विद्यापति को इस रहस्य की जानकारी तब मिली जब एक यात्रा के क्रम में प्यास से व्याकुल अपने मालिक को उनके नौकर उगना ने अपनी जटा से गंगाजल निकालकर उनकी प्राण रक्षा की। निर्जन रास्ते में गंगाजल के स्रोत को लेकर जब विद्यापति ने कठोरता दिखायी तो उगना ने शिव रूप में आकर उन्हें सच्चाई से अवगत कराया। लेकिन शिव ने चेतावनी दे डाली कि इस रहस्य को वे कहीं उजागर न होने दें अन्यथा वे उनका साथ छोड़कर चले जायेंगे। लेकिन एक दिन विद्यापति की पत्नी ने गुस्से में आकर नौकर उगना पर डंडे उठा लिये। इस अनहोनी को देखकर विद्यापति के मुँह से अकस्मात निकल पड़ा– 'अरे! हाँ! हाँ! शिव पर साक्षात प्रहार!' वचनभंग होते ही उगना रूपधारी शिव तुरत अन्तर्धान हो गये। विद्यापति अपनी इस गलती पर पश्चात्तप करते हुए उगना के वियोग में **"उगना रे मोर कतए गेला, कतए गेला शिव किदहु गेला"** पद की रचना की जो आज भी जन-जन के कण्ठ में रची-बसी हुई है।

इसी तरह एक किंवदन्ती विद्यापति के मृत्युकाल से जुड़ी हुई है। अपना अन्तकाल निकट जान विद्यापति प्राण वियोग हेतु अपने सकल परिजनों के साथ गंगालाभ हेतु गंगा तट की ओर विदा हुए। जब गंगा का तट कुछ दूर रह गया तब विद्यापति ने वहीं अपना पड़ाव डाला और कहा कि– 'जब बेटा इतनी दूर से चलकर माँ के पास आया है तो क्या माँ अपने बेटे के लिये इतनी

दूर भी नहीं आ सकती है?' कहते हैं कि माँ गंगा ने उनकी पुकार सुन ली और अपनी धारा को मोड़ते हुए वह अपने पुत्र विद्यापति के समीप कलकल-छलछल करती हुई दौड़ी चली आयी। विद्यापति ने माँ गंगा का पूजन-मज्जन किया और एक गंगा-स्तुति विषयक पद- **"बड़ सुख सार पाओल तुम तीरे"** की रचना की। वहीं अपने अवसान तिथि की स्वयं घोषणा की- **कार्तिक धवल त्रयोदशि जान विद्यापतिक आयु अवसान**। तत्पश्चात विद्यापति ने गंगा की गोद में समाधि ले ली।

विद्यापति से जुड़ी कितनी ही किंवदंतियाँ मिथिला में आज भी व्याप्त हैं। वहीं उन किंवदन्तियों से जुड़े स्थल सब आज भी वर्त्तमान हैं, जहाँ शिवमठ और अन्य देवी-देवताओं के मंदिर हैं और जिनकी ख्याति मिथिला में एक तीर्थस्थल के रूप में है। बिसफी, भैरवा, उगनास्थान, कपिलेश्वरनाथ, देकुली के वर्द्धमानेश्वरस्थान, नेपाल का रजाबनौली, गंगा के तट पर स्थित विद्यापतिनगर का विद्यापति मठ आदि अनेक स्थल आज भी मौजूद हैं, जहाँ विद्यापति से जुड़ी स्मृतियाँ और किंवदन्तियाँ रची-बसी हुई हैं।

इस प्रकार देखा जाता है कि उत्तर मध्यकाल में मिथिला में अवतीर्ण विद्यापति एक सामान्य कवि, विद्वान, स्मृतिकार, योद्धा, इतिहासकार, संगीतकार, नाट्यविद्, विधिवेत्ता ही नहीं थे अपितु वे एक अवतारी पुरुष के सदृश युगपुरुष थे। वस्तुतः विद्यापति के बहुआयामी व्यक्तित्व और उनके चिरकालिक अवदानों को देखते हुए यह कहने में कोई संकोच नहीं होता है कि जब कोई धरती हजारों वर्ष तपस्या करती है तब उसकी मिट्टी से विद्यापति जैसा कोई महापुरुष उत्पन्न होता है। सुदूर अतीत कालमें उस वैदिक युग में याज्ञवल्क्य-जैसे महापुरुष के अवतरण के हजारों वर्ष बाद विद्यापति दूसरे महापुरुष के रूप में देखने को मिलते हैं जिनकी खूबियाँ अनन्त थीं। जिस प्रकार अपने समय में याज्ञवल्क्य ने अपने अवदानों से मिथिला का संगठन किया था ठीक उसी प्रकार उनके हजारों वर्ष पश्चात् हुए विद्यापति ने मिथिला का पुनसंगठन किया और उन्हीं के द्वारा निर्धारित मानदण्ड पर आज भी मिथिला चल रही है। कई अर्थों में तो विद्यापति याज्ञवल्क्य से आगे बढ़े-चढ़े नजर आते हैं लेकिन यह मिथिला का दुर्भाग्य है कि अधिकांश विद्वानों ने विद्यापति का मूल्यांकन केवल कोमलकांत पदावलीकार के रूप में की उनके व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व के असंख्य पक्ष विवेचित होने से रह गये। दरअसल विद्यापति वाङ्मय का जितना अध्ययन किया जाय उतने ही नये-नये तथ्य और पक्ष उभर कर सामने आते हैं और इस दृष्टिकोण से विद्यापति का व्यक्त्वि और कर्त्तृत्व उनके ही शब्दों में क्षण प्रतिक्षण कुछ नवीन अर्थात **तिले-तिले नूतन** प्रतीत होता है। विद्यापति की सम्पूर्णता में तुलना न तो उनके पूर्व के और नही उनके पश्चात् की किसी मनीषी से करना उचित जान पड़ता है। वस्तुतः विद्यापति अपने ही शब्दों में **तोहर सरिस एक तोँहे माधव** अर्थात अपनी उपमा वे स्वयं हैं। इतिहास में स्वर्णकाल की कल्पना अगर की जाती है तो उस अर्थ में विद्यापति का युग मिथिला का स्वर्णकाल था।

सहयोगी-ग्रन्थ सूची

1. **ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर वो- 1** जयकांत मिश्र, तीरभुक्ति पब्लिकेसन, इलाहाबाद 1949
2. **महाकवि विद्यापति,** शिवनंदनठाकुर, मैथिली अकादमी, पटना, 1979
3. **पुरुष परीक्षा**, विद्यापति, सुरेंद्रझा सुमन (अनु.) मैथिली मंदिर, दरभंगा 1970
4. **भू-परिक्रमण**, विद्यापति, मुनीश्वर झा, (सं.) कलकत्ता
5. **विभागसार**, विद्यापति, गोविदझा (सं.), मैथिली अकादमी, पटना
6. **लिखनावली**, विद्यापति, इंद्रकांत झा (सं.)
7. **शैवसर्वस्वसार**, विद्यापति, इंद्रकांत झा (सं.), मैथिली अकादमी, पटना 1979
8. **विद्यापति**, खगेंद्रनाथ मित्र एवं विमानविहारी मजुमदार, पटना, सं.- 2010
9. **विद्यापति**, शिवप्रसादसिंह, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1961
10. **विद्यापतिठाकुर**, उमेशमिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1961
11. **विद्यापति**, शैलेंद्रमोहनझा, मैथिली अकादमी, पटना, 1977
12. **विद्यापति गोष्ठी**, सुकुमार सेन, मिथिला रिसर्च सोसाइटी, दरभंगा
13. **राजतंरगिणी**, लोचन, शशिनाथझा (सं.) मैथिली अकादमी, पटना
14. **कीर्त्तिलता,** विद्यापति, वासुदेव शरण अग्रवाल (स.)
15. **विद्यापतिकालीन मिथिला**, इंद्रकांत झा, मैथिली अकादमी, पटना, 1986
16. **मिथिला तत्त्व विमर्श,** परमेश्वर झा, मैथिली अकादमी पटना, 1977
17. **विद्यापति-गीत-संचय,** रामदेवझा एवं मोहन भारद्वाज, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1999
18. **विद्यापति भक्ति-दर्शन,** अमरनाथचौधरी, ज्योति प्रकाशन, दरभंगा,
19. **विद्यापति पदावली,** नगेंद्रनाथगुप्त (सं.) वसुमती साहित्य मंदिर, कोलकाता
20. **बाङ्ला साहित्येर इतिहास (प्रथमखंड)**, सुकुमार सेन, इस्टर्न पब्लिर्स, कलकत्ता, 1970
21. **विद्यापति काव्यालोक,** नरेंद्रनाथदास, मित्रमंडल, लहेरियासराय 1937

***

बोध कथा

एक बार एक धनी आदमी एक सन्त के पास पहुँचा और वहाँ उसने अपनी विशाल सम्पत्ति का वर्णन करना आरम्भ किया। सन्त ने उसके गाँव का नक्शा उसके सामने रख दिया और कहा कि इस नक्शे पर दिखाओ तब मैं जानूँगा। उस आदमी ने पूरे गाँव को दिखाते हुए कहा कि ये सब मेरी ही जमीन हैं। फिर सन्त ने उस तहसील का नक्शा मँगाया और कहा कि इस नक्शे पर दिखाओ। उस आदमी ने बडे गौर से देखकर नक्शे पर एक छोटा-सा बिन्दु बना दिया कि शायद यहीं मेरी जमीन है। फिर सन्त ने पूरे देश का नक्शा मँगाया और कहा कि इस पर अपनी जमीन दिखाओ। वह आदमी घबड़ा गया और कहा कि इस पर तो कहीं जमीन दीखती ही नहीं है। साथ ही, उसे अपनी सम्पत्ति पर घमण्ड की भी असलियत मालूम हो गयी।

विद्या और विवेक में अन्तर

❑ डॉ० राजनीति झा

विद्या और बुद्धि या विवेक के सूक्ष्म अन्तर को बतानेवाली एक उत्तम कथा पंचतंत्र के पाँचवें तंत्र में इस प्रकार है- किसी नगर में चार ब्राह्मण-पुत्र निवास करते थे। उनमें से तीन शास्त्रज्ञ विद्वान्, मगर एक अनपढ़ था। एकबार तीनों शास्त्रज्ञों ने किसी राजा के दरबार में जाकर अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने का निश्चय किया ताकि राजा से वे उपहार प्राप्त कर सकें। उनमें से सबसे बड़े ने कहा कि अनपढ़ भाई को राजा के दरबार में ले जाने से कोई लाभ नहीं उलटे वह बिना कुछ किए उपहारों का हिस्सेदार बन जायगा, इसलिए उसे साथ ले जाना बेकार है। दूसरे भाई ने उसका समर्थन किया पर तीसरे भाई ने इस विचार से अपनी असहमति जताई और उसको भी साथ ले चलने पर अड़ गया। निदान उसे भी साथ ले लिया गया।

रास्ते में एक जंगल था, जिसमें कुछ हड्डियाँ बिखड़ी पड़ी दिखी जो किसी पशु की थी। उनलोगों ने मृत जीव को जीवित करने की विद्या पढ़ी थी। इसलिए उनके मन में विचार आया कि क्यों न इन हड्डियों को इकट्ठा कर उसपर अपनी विद्या की परीक्षा ली जाय। यह सोचकर एक भाई ने उन हड्डियों को इकट्ठा कर उसका ढ़ाँचा तैयार किया। दूसरे ने अपनी विद्या के बल पर उसमें रक्त, मांस और चर्म का सृजन किया। पर जब तीसरे ने अपनी विद्या आजमाने के लिए जीवनदायिनी विद्या का प्रयोग करना चाहा तो चौथे भाई ने जो अनपढ़ था उसे रोकते हुए कहा कि यह ढाँचा सिंह का है इसलिए यदि इसमें जान डालोगे तो यह जीवित होकर हम चारों भाईयों को खा जायगा। इसलिए इसे जीवित मत करो। पर तीसरा भाई अपनी बात पर यह कहते हुए अड़ा रहा कि तब तो मेरी विद्या अपरीक्षित ही रह जायगी। किसी दूसरे भाई ने भी उसे मना नहीं किया। इसपर छोटे भाई ने, जो अनपढ़ था, उससे थोड़ी देर रुक जाने का आग्रह किया और खुद पेड़ पर जा चढ़ा। फिर वही हुआ जो होना था। प्राणवान् होते ही सिंह ने उन तीनों को अपना भक्ष्य बना लिया। केवल वही भाई बचा रह गया जो था तो अनपढ़ मगर विवेकवान् था, जिसमें व्यवहारिक बुद्धि थी। किसी के लिए भी लिखी गई यह सिंहकारक कथा विद्या और बुद्धि या विवेक के सूक्ष्म अन्तर को बड़ी सहजता से प्रकट करती है।

वस्तुतः पुस्तकीय ज्ञान में कोई कितना भी सम्पन्न क्यों न हो लेकिन यदि उसमें व्यवहारिक ज्ञान नहीं पैदा हुआ तो वह मूर्ख की तरह उपहासास्पद ही है। यह व्यवहारिक ज्ञान चिन्तन और व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त होता है। विद्या उसकी मात्र सहायिका है। कहा भी है कि शास्त्रों में कुशल होने पर भी व्यवहारिक ज्ञान या बुद्धि-विवेक से रहित व्यक्ति उसी प्रकार उपहास का पात्र होता है जिस प्रकार बेशकीमती वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित मूर्ख व्यक्ति (अपने गँवारूपन के कारण) उपहास का पात्र होता है।

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिता।
सर्वे ते हास्यता यान्ति यथा मूर्खाः सुशोभिता॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुद्धि विद्या से बड़ी होती है। विद्या से बुद्धि श्रेष्ठ है यह अनुभवी लोगों का सर्वसम्मत निर्णय है। जिसको बुद्धि है वही बलवान् है निबुर्द्धि को बल कहाँ? ''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धिस्य कुतो बलः'' बुद्धिहीनों की हीनावस्था सुनिश्चित है, क्योंकि सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान से दुनिया में काम नहीं चलता, पग-पग पर विवेक की जरूरत होती है। जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को दूर करने में केवल सूर्य ही समर्थ होता है उसी प्रकार मनुष्यों की विपत्ति को दूर करने में केवल उसका विवेक ही सक्षम होता है।

विवेकः व्यसनं चैव पुंसां क्षपयितुं क्षमः।
अपहर्तुं समर्थोऽसौ रविरेव निशातमः॥

असल चीज तो विवेक है जिसके बिना विद्या कभी संकट में भी डाल सकती है। विवेकहीन विद्वान् तो वस्तुतः पठित मूर्ख होता है- पढ़ा हुआ तोता, जो केवल रटी हुई बात दुहरा सकता है।

इन्हीं कारणों से महाभारत में भी बुद्धि को धर्म कहा है-

हे राजन! देवाधिदेव परमेष्ठी ब्रह्म ने, अहिंसा, सत्य, अक्रोध (प्रेम) तपस्या (विवेकपूर्ण शुभ श्रम) दान (त्याग वृत्ति) दम (मन एवं इन्द्रियों का संयम) मति (बुद्धि, ज्ञान, विवेक व्यवहारिक बुद्धि) अनसूया (किसी के दोष न देखना) अमात्सर्य (किसी से डाह न करना) अनीर्ष्या (जलन का अभाव) और शील (नैतिक एवं विनम्रतापूर्ण आचार-व्यवहार) को धर्म कहा है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्तपो दानं दमो मतिः।
अनसूयाप्यमात्सर्यमनीर्ष्या शीलमेव च।
एष धर्मः कुरुश्रेष्ठ कथितः परमेष्ठिना॥ *(शान्ति पर्व- 108/12)*

यही बात मनुस्मृति के अधोलिखित श्लोक से भी ध्वनित होती है कि धर्म के शुद्ध स्वरूप को जानने की इच्छा रखनेवाले को प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान और विविध शास्त्रों का ज्ञान चाहिए।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्म शुद्धिमभीप्सता॥ (12/105)

प्रत्यक्ष प्रमाण का अर्थ है वह जो इन चर्मचक्षुओं से देखा जा सके। अनुमान का अर्थ है जो अन्तश्चक्षु यानी विवेक से जाना जा सके और शास्त्रज्ञान का अर्थ है पुस्तकीय जानकारी अर्थात् विद्या। धर्माधर्म या करणीय-अकरणीय का निर्णय इन तीनों के आधार पर ही हो सकता है। स्पष्टतः यह श्लोक विद्या-विवेक और तर्क-वितर्क की महत्ता को दर्शाता है।

यही बात महाभारत भी कहता है जब वह देवराज इन्द्र के हवाले से देवगुरु वृहस्पति के इस कथन का उल्लेख करता है कि केवल शास्त्र वचनों अथवा केवल बुद्धि (तर्क-वितर्क) द्वारा धर्माधर्म का सम्यक ज्ञान नहीं होता अपितु दोनों के समुच्चय से होता है।

न धर्मवचनं वाचा नैव बुद्ध्येति न श्रुतम्।
इति बार्हस्पतं ज्ञानं प्रोवाच मघवा स्वयम्॥ (शान्ति पर्व-142/37)

शान्तिपर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर से भी यही बात कही कि धर्म बड़ा गहन विषय है, उसका सम्यक् बोध शास्त्र-वचनों और बुद्धि का प्रयोग कर विवेचन और विश्लेषण से होता है।

धर्मोह्यणीयान् वचनाद् बुद्धिश्च भरतर्षभः। (130/6)

स्त्री पर्व में यही बात युधिष्ठिर ने अर्जुन से कही है कि धर्म के इस गूढ़ स्वरूप का ज्ञान बुद्धि से ही हो सकता है।

यदिदं धर्म गहनं बुद्ध्या समनुगम्यते॥ (5/1)

महाभारत में धर्मव्यास कहते हैं कि जो न्याययुक्त होता है वही धर्म है। अनाचार का नाम ही अधर्म है। ऐसा शिष्ट पुरुषों का कहना है।

आरम्भो न्याययुक्तो यः स हि धर्म इति स्मृतः।
अनाचारस्त्वधर्मेति एतच्छिष्टानुशासनम्॥ (वनपर्व 207/77)

धर्म की यह परिभाषा भी बुद्धि और विवेक की आवश्यकता का प्रतिपादन करती है क्योंकि न्याय क्या है? और अन्याय क्या है? यह तो बुद्धि विवेक से ही जाना जा सकता है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि धर्माधर्म का निर्णय अर्थात् किसी समय और किसी परिस्थिति में क्या करणीय है और क्या अकरणीय है इसका निर्णय बुद्धि का प्रयोग किये बिना हो ही नहीं सकता। हमारी संस्कृति और धर्मग्रन्थों में विवेक अर्थात् तर्क द्वारा निर्णय पर पहुँचने को कितना महत्व दिया गया है वह अधोलिखित उद्धरणों से पूरी तरह स्पष्ट होता है।

वेदों के छः अंगों में यास्क मुनिकृत निरुक्त का प्रमुख स्थान है। शब्दों के विश्लेषण द्वारा वेदों के मन्त्रों का अर्थ जानने में सहायता देना इसका मुख्य विषय है। यह निरूक्त तर्क की महत्ता साफ शब्दों में घोषित करता है। उसके अनुसार इहलोक से जब ऋषि परम्परा समाप्त होने लगी तो मनुष्यों ने देवताओं से पूछा कि अब हमारे लिए कौन ऋषि होंगे? देवताओं ने उत्तर दिया अब तर्क ही ऋषि का स्थान लेगा। विचारशील विद्वान तर्क द्वारा जिस निर्णय पर पहुँचता है उसे आर्ष वचन या ऋषि-वचन ही समझना चाहिए।

मनुष्या वा ऋषित्क्रामप्सु देवान्ब्रूवन्को न ऋषिर्भविष्यतीति।
तेभ्य एतं तर्कमृषि प्रायच्छन् यदेव किंचानूचानोऽम्यूहति आर्षतदवति॥13।12

जन साधारण को यह उक्ति सहजता से याद रहे इसलिए इस श्लोक को अपने कवि ने अद्योलिखित रूप से छन्दोबद्ध किया है।

ऋषि परम्परा वसुन्धरा से लगी खत्म जब होने
पूछा मानव ने देवों से कौन ऋषि अब होंगे?
उत्तर मिला तर्क लेगा अब आगे ऋषि स्थान
युक्ति-युक्त जो भी होता वह वचन है ऋषि समान
ऊहापोह के बाद करे विद्वानों ने जो निश्चय।
आर्ष वचन ऋषि वचन वही है यह देवों का निर्णय॥

शास्त्रों में कोई बात लिखी है इसीलिए उसे मान लेना ठीक नहीं, क्योंकि केवल शास्त्र के द्वारा कर्तव्याकर्तव्य (धर्माधर्म) का निर्णय नहीं हो सकता। शास्त्र-वचनों को भी विवेक अर्थात्

व्यावहारिक बुद्धि द्वारा परखकर निर्णय लेना चाहिए। युक्तिहीन विचार अर्थात् तर्क की कसौटी पर खड़ा न उतरनेवाले वचन तो धर्म की क्षति ही करते हैं।

केवलम् शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो हि विनिर्णयः।
युक्तिहीनं विचारे तु धर्महानिः प्रजायते॥ (महाभारत)

तर्क-वितर्क, वाद-विवाद से असलियत उभरकर सामने आती है। 'वादे-वादे जायते तत्व बोधः इस लोकोक्ति का यही अर्थ है।

हमारी संस्कृति में योगवासिष्ठ का कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। उसमें महर्षि वसिष्ठ ने राम को उपदेश दिया है। यह ग्रन्थ भी तर्क-वितर्क की महत्ता का बखान करते हुए कहता है कि सामान्य व्यक्ति द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि वह युक्तियुक्त (तर्क संगत) बात कहता है तो ग्रहण करने योग्य है, इसके विपरीत ऋषिप्रोक्त शास्त्र भी यदि तर्कहीन बात कहता है तो वह त्यागने योग्य है। मनुष्य को न्याय्य (नैतिक, उपयोगी, हितकर) बात ही माननी चाहिए। तर्कसंगत बात यदि कोई बच्चा भी कहे तो मान लेना चाहिए, क्योंकि वह उपयोगी होता है। इसके विपरीत स्वयं ब्रह्मा भी कोई तर्कहीन बात कहें तो उसे तिनके की तरह तुच्छ समझकर त्याग देना चाहिए।

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम्।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना॥
युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥ (2/18/23)

अपने कवि के छन्द में-

साधारण भी व्यक्ति अगर कुछ युक्तियुक्त कहता है,
ग्रहण करो, उसमें निश्चय ही सारतत्व रहता है।
तर्कविरुद्ध वचन यदि कोई आर्ष पुरुष ही कहता,
त्यागो उसे न उसमें कोई सारतत्व है रहता।
बालक ही यदि युक्ति-युक्त कुछ कहता है तो ले लो,
ब्रह्मा भी यदि तर्कहीन कुछ कहते त्याग उसे दो॥

सुभाषितरत्न-भाण्डागार में भी इस आशय का अधोलिखित श्लोक है, जिसका आशय है कि बालक क्या तोता भी यदि युक्तिसंगत एवं तर्कपूर्ण बात कहे तो उसे आत्मसात कर लेना चाहिए। इसके विपरीत वृद्ध अथवा विद्वान् भी असंगत और तर्कहीन बात कहे तो उसे नहीं मानना चाहिए।

युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं बालादपि शुकादपि।
अयौक्तिकं तु सन्त्याज्यं अप्युक्तं पद्मयोनिना॥

भगवान् गौतम बुद्ध, हजरत मुहम्मद गाँधी आदि आर्ष पुरुषों ने भी बुद्धि और विवेक को ही धर्म का निर्णायक कहा है। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि किसी बात को इसलिए नहीं मान लो क्योंकि वह किसी आर्ष ग्रन्थ में लिखा है, इसलिए भी नहीं मान लो क्योंकि वह किसी आर्ष-पुरुष के द्वारा कथित है, इसलिए भी नहीं मान लो, क्योंकि वह परम्परा से चली

आ रही है, इसलिए भी नहीं मान लो क्योंकि तुम्हारे गुरु ने वैसा कहा है, बल्कि बुद्धि-विवेक की कसौटी पर कसने के बाद यदि वह खड़ी उतरे तभी उसे मानो।

भगवान् बुद्ध के उपर्युक्त वचन से मिलती-जुलती बात महाभारत में भी तुलाधार वैश्य ने ऋषि जाजलि से कही है। तुलाधार कहते हैं- जाजले! केवल इसलिए कि अमुक कर्म पूर्वजों द्वारा किया गया है ऐसा नहीं। किसी कर्म का हेतु क्या है, या परिणाम क्या है उसपर विचार करके ही तुम्हें किसी धर्म को स्वीकार करना चाहिए। लोगों ने क्या किया है या क्या कर रहे हैं यह जानकर उसका अंधानुकरण नहीं करना चाहिए।

केवलाचरित्वात् तु निपुणो नावबुद्ध्यसे।
कारणाद् धर्ममन्विच्छेन्न लोक चरितं चरेत्॥
यो हन्याद् यश्च मां स्तौति जाजले॥ *(महा. शा.-262/525)*

हजरत मुहम्मद ने मुआज को यमन का सूबेदार बनाकर भेजा। जब सूबेदार चलने लगा, हजरत ने पूछा- वहाँ की समस्याओं का समाधान कैसे करोगे? मुआज ने कहा- कुरान के आधार पर। हजरत ने पूछा- अगर कुरान के साथ समस्याओं का समाधान नहीं बैठा तो? मुआज ने कहा-पैगम्बर की मिसाल सामने रखकर। हजरत ने पूछा- यदि वह भी ठीक न बैठा तब? मुआज ने कहा- अपनी अक्ल और इन्साफ को आगे रखकर काम करूँगा। हजरत मुहम्मद ने अन्तिम तरीके को ठीक बताते हुए कहा कि दूसरों की कही बात को सही नहीं माननी चाहिए। अक्ल का इस्तेमाल करने पर जो सही जँचे वही करना चाहिए।

इस वार्ता से दो निष्कर्ष निकलते हैं- एक यह कि कोई भी पुस्तक जीवन की सारी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ नहीं होती है, और दूसरा यह कि आदमी का असली गुरु उसकी अपनी बुद्धि है। किसी समस्या का सही समाधान अपनी बुद्धि का प्रयोग करके ही ढूँढ़ा जा सकता है। पुस्तकों के शब्द तो बेजान होते हैं, उसका समयानुकूल अर्थ बुद्धि के प्रयोग से ही निकलता है।

आधुनिक काल में सन्त राजनीतिज्ञ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी इसी बात पर जोर दिया है कि धर्माधर्म का निर्णय बुद्धि-विवेक की कसौटी पर कसकर ही किया जाय। उन्हीं के शब्दों में 'शास्त्र के नाम पर चलनेवाली बहुत-सी बातें शास्त्रीय नहीं होती। इसलिए शास्त्र की पुस्तकें पढ़ते वक्त बहुत सावधानी रखनी चाहिए। शास्त्र का प्रमाण जब बुद्धि के पासें पर खड़ा होता तब वह कमजोरों के लिए मददगार साबित होता है और उन्हें ऊँचा उठाता है। लेकिन जब वह आत्मा की गहराई में से आनेवाली पुकार से पवित्र हुई बुद्धि के तकाजे पूरे करने से इन्कार करता है और उसकी जगह ही रोक लेना चाहता है तब वह इंसान को नीचे गिराता है। स्मृतियों में ऐसे कितने ही नियम बताए जा सकते हैं जो लाजिमी तो क्या, अमल करने लायक भी नहीं होते।

जो कुछ संस्कृत में लिखा है उन सबको धर्मशास्त्र नहीं मानना चाहिए। इसी तरह यह भी नहीं मानना चाहिए कि धर्मशास्त्र समझे जानेवाले मनुस्मृति वगैरह प्रामाणिक ग्रन्थों में जो कुछ आजकल हम पढ़ते है। वह सब मूल लेखक का ही लिखा है, या ऐसा हो तो भी वह सब आज अक्षरशः मानने लायक है।

कुछ सिद्धान्त सनातन है। लेकिन यह समझने की कोई वजह नहीं कि उन सिद्धान्तों पर जो-जो आचार जिस-जिस जमाने के लिए बनाए गए थे वे सभी दूसरे जमाने में भी सच ही रहेंगे। स्थान, काल और परिस्थिति के कारण आचार बदलते हैं। जहां बुद्धि लगायी जा सकती है वहां श्रद्धा की गुंजाइश नहीं होती जो चीज बुद्धि से परे है उसी के लिए श्रद्धा काम की है। जैसे सभी पुरानी बातों को न मानने वाले भूल करते हैं वैसे ही उन्हें सच्ची माननेवाले भी गलती करते हैं। पुरानी हो या नई सभी चीजों को बुद्धि की कसौटी पर चढ़ाना चाहिए और जो चीज उस पर न चढ़ सके उसे बिलकुल छोड़ देना चाहिए। शास्त्रों के किसी भी ऐसे अर्थ को नहीं मानना चाहिए जो तर्क और नैतिकता के प्रतिकूल हो।

❑❑

नवादा जिला के सीतामढ़ी में लव एवं कुश के साथ माता सीता की प्राचीन प्रतिमा

पुस्तक अंश

सीताजी का बचपन

जहूरबख्श 'हिन्दी कोविद'

आधुनिक हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल में बालकथा के क्षेत्र में जहूरबख्श हिन्दी कोविद का नाम आदर के साथ लिया जाता है। 1889 ई. मे जन्मे जहूरबख्श ने सैकड़ो प्रेरणादायक बाल कहानियाँ लिखी, जिनका प्रकाशन उस काल के महान् सम्पादकों ने किया। उन्होंने भारत की प्रख्यात पौराणिक नारियों पर भी पुस्तकें लिखीं थी- 'देवी सती', 'देवी पार्वती', 'नल-दयमन्ती' तथा 'देवी सीता'। 'देवी सीता' का प्रकाशन 1929 ई. में गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से हुआ था, जिसके प्रकाशक पं. दुलारेलाल भार्गवजी थे। इसी पुस्तक का पहला अध्याय, जिसमें देवी सीता के बाल्यकाल का वर्णन है, यहाँ प्रासंगिक जानते हुए प्रबुद्ध पाठकं के लिए उद्धृत है।

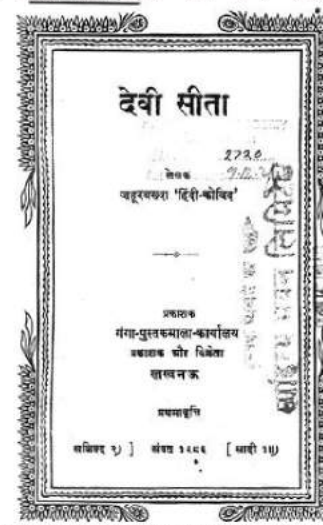
देवी सीता

लेखक
जहूरबख्श 'हिंदी-कोविद'

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
प्रकाशक और विक्रेता
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १)] संवत १९८६ [आदी १॥)

देवी सीता का चरित्र अत्यन्त पवित्र और दिव्य है। वह आदर्श की चरम सीमा का भी उल्लंघन कर आदर्श-तट हो गया है। उसमें महिलाओं के लिये शिक्षा का अक्षय भांडार है। ऐसे दिव्य चरित्र को सुंदरता-पूर्वक लिख सकना तो किसी समर्थ कवि का ही कार्य है। हमारे लिये तो यह असंभव ही है। फिर भी जैसा कुछ बन सका, हमने इसके लिखने की चेष्टा की है। न तो चरित्र को अत्यन्त संक्षिप्त ही किया है, न विशेष विस्तृत। इसकी भाषा पूर्व-प्रकाशित पुस्तकों की भाषा से कुछ क्लिष्ट रक्खी गई है, और वह इस उद्देश्य से कि पाठिकाओं के भाषा-विषयक ज्ञान की कुछ उन्नति हो सके, जिससे वे उच्च कोटि की पुस्तकें भी पढ़ने-समझने-योग्य सामर्थ्य प्राप्त करें। आशा है, पाठिकाएँ यह पुस्तक पसंद करेंगी । यदि भार्गवजी की ऐसी ही दया रही, तो हम इसी प्रकार की और पुस्तकें जिसने की भी चेष्टा करेंगे।

जहूरबख्श

सीताजी का बचपन

बिहार प्रदेश के उत्तर में तिरहुत नाम का भूमि-खंड पुराने समय में यह भूमि-खंड 'मिथिला' के नाम से प्रसिद्ध था। आज भी वहाँ के रहनेवाले 'मैथिल' कहलाते हैं और उनकी भाषा 'मैथिली'। 'मिथिला' के नाम से आज भी हमारे हृदय में हर्ष की लहरें उठने लगती हैं, गर्व से

हमारी छाती फूल उठती है; क्योंकि भारतवर्ष का माथा सदा-सर्वदा के लिये ऊँचा कर देनेवाली सती सीता ने इसी मिथिला-प्रदेश में अपनी बाल-क्रीड़ाएँ की थीं।

बात त्रेता युग की है। उस समय मिथिला में बड़े-बड़े प्रतापी राजाओं ने राज्य किया था। वहाँ का राजवंश बड़ा ही मानी, कुलीन और प्रसिद्ध था। इस राजवंश के मूल पुरुष महात्मा निमि थे। इसीलिये वह राजवंश 'निमि-वंश' कहलाता था। महात्मा निमि की कई पीढ़ी बाद उस वंश में सीरध्वज और कुशध्वज नाम के दो राजकुमारों ने जन्म लिया। सीरध्वज बड़े भाई थे, इसलिये वे ही राजा बनाए गए। सीरध्वज राजगद्दी पर बैठकर आनंद से राज्य करने लगे।

सीरध्वज कोरे राजा ही न थे। वे बड़े ही विद्वान, ज्ञानी और जितेंद्रिय थे। वे बड़े ही धर्मात्मा और सब शास्त्रों के जाननेवाले थे। बात तो यह थी कि वे राजा तथा गृहस्थ होने पर भी पूरे महात्मा और बैरागी थे। तृष्णा उनको छू भी न गई थी। धर्म और न्याय उनके हृदय में बसता था। महाराज सीरध्वज के दरबार में जहाँ एक ओर नालिश-फरियाद की सुनाई होती थी, वहाँ दूसरी ओर साधु-महात्माओं तथा ज्ञानियों का भी जमघट लगा रहता था। ज्ञान-ध्यान एवं धर्म की खूब चर्चा होती थी। महाराज यद्यपि क्षत्रिय थे, तो भी बड़े बड़े ज्ञानी-ध्यानी और महात्मा लोग उनसे धर्म-कर्म की बातें सीखने आते थे। महाराज का ज्ञान एवं उनकी विद्वत्ता देख बड़े-बड़े ज्ञानियों तथा पंडितों का माथा झुक जाता था। महाराज जो काम करते थे, केवल कर्तव्य समझकर ही करते थे। उनका मन संसार के माया-जाल से दूर ही केवल ईश्वर के चिन्तन ही में-अठखेलियाँ किया करता था। उनके ऐसे-ऐसे गुण देख महात्मा तथा पंडित उन्हें 'महर्षि' और 'विदेह' कहने लगे थे।

महाराज सीरध्वज जैसे ज्ञानी-ध्यानी थे, वैसे ही राजनीति में भो चतुर थे। प्रजा पर उनकी बड़ी ही ममता थी। उनके न्याय पर प्रजा को बड़ा ही विश्वास था। महाराज के राज्य में प्रजा खूब फल-फूल रही थी। चारों ओर चैन की वंशी बज रही थी। राज्य-भर में कहीं भी रोग-शोक का चिह्न दिखाई न देता था। प्रजा उन्हें पिता के समान समझती थी। यदि ज्ञानी-ध्यानी महाराज को महर्षि विदेह के नाम से पुकारते थे, तो प्रजा उन्हें 'महर्षि जनक' कहती थी। प्रजा के पिता-समान होने के ही कारण महाराज आगे चलकर महर्षि जनक के नाम से प्रसिद्ध हुए। सारे भारत में महाराज जनक का नाम छा रहा था। लोग उनके गुण गाते-गाते नहीं अघाते थे। इस प्रकार महाराज जनक ने अपने उत्तम गुणों से निमि-वंश का बड़प्पन खूब ही बढ़ा दिया था।

देवी सीता इन्हीं प्रतापी महात्मा जनक की बेटी थीं। सीताजी पर राजा-रानी का बड़ा ही दुलार था। वे बड़े ही यत्न और प्रेम से उनका पालन-पोषण करते थे। चंद्रमा की कलाओं को तरह सीताजी दिन दूनी बढ़ने लगी। शुक्ल पक्ष में जिस प्रकार बादलों में दिन-दिन चंद्रमा की सुंदर चमक दिखाई देती जाती है, उसी तरह सीताजी के शरीर में भी रूप की ज्योति झलकने लगी। सीताजी का कोमल सुंदर शरीर, उनका शान्त-स्वभाव, उनकी सरलता, उनके बोलचाल की मधुरता देख सभी प्रसन्न हो उठते और आपस में कहते थे- 'भाई, जानकी तो जैसे देव-कन्या है। महाराज जैसे तपस्वी हैं, उनके यहाँ वैसी ही कन्या भी जन्मी है। तुम्हीं कहो, ऐसा रूप-गुण किन-किन कन्याओं में पाया जाता है? अहो! इसकी बोली तो देखो, कैसी मीठी है! मानों कानों

में अमृत को बूंद टपकती हो! भला, कोयल की बोली में यह मिठास कहाँ?' इस तरह सभी छोटी-सी सीताजी के गुण गाते थे।

जब सीताजी कुछ बड़ी हुईं, तब पढ़ने के लिये बिठाई गईं! उन्होंने बड़े ही प्रेम से पढ़ना शुरू किया। उनकी बुद्धि देखकर गुरुआनियाँ भी थोड़े ही दिन में खुश हो गईं। बात यह थी कि उन्हें जो बात बताई जाती, वे उसे खूब ध्यान से सुनतीं और मन लगाकर अपना पाठ याद कर लेती थीं। जो बात मन लगाकर सुनी जाय वह चटपट समझ में आ ही जायगी। थोड़े ही दिनों में सीताजी लिखने-पढ़ने में खूब चतुर हो गईं। इतिहास, पुराण और नीति को कितनी हो अच्छीअच्छी कथाएँ उन्हें याद हो गईं। सुंदर-सुंदर श्लोक और कविताएँ उनकी जबान में बसने लगीं। तब गुरुआनियों ने उन्हें सोने-पिरोने तथा और घरू-काम सिखलाना शुरू किया। सीताजो देखते-देखते इन कामों में भी पूरी चतुर हो गईं। थोड़ी ही उमर में वे नारी-धर्म की सब बातों की पंडिता बन गईं। उनकी वह अपूर्व विद्या, वह अपूर्व गुणगरिमा देखकर सभी कहने लगे- 'सीता में लक्ष्मी भी हैं, सरस्वती भी हैं, रूप भी है और उसको जगमगानेवाले गुण भी हैं।' बालिका सीता के साथ जो बालक-बालिकाएँ खेलती थीं, या जो सखी-सहेलियाँ पढ़ती थीं, वे भी उनसे बहुत प्रसन्न रहती थीं। क्योंकि सीताजी न तो कभी उनसे कोई बड़ी बात कहती थीं और न लड़ती-झगड़ती ही थीं। वे सभी के साथ हिल-मिलकर खेलती-कूदती या पढ़ती-लिखती थीं यही नहीं, उनकी सखी सहेलियाँ उनसे खूब सहायता भी पाया करती थीं। वे किसी को खिलाती-पिलाती थीं, किसी को रुपए-पैसे या कपड़े-लत्ते देती थीं और किसी को लिखने-पढ़ने का सामान ले देती थीं। ऐसी प्रेममयी बालिका से भला कौन नाराज रहता? सीताजी-जैसी गुणवती बेटीपाकर राजवंश के सभी लोग फूले अंग नसमाते थे।

महर्षि जनक के पास हमेशा ही दूर-दूर से तपस्वी आया करते थे। सीताजी भी उनकी बातें बड़े प्रेम और ध्यान से सुना करती थीं। जब ऋषि लोग अपने सुंदर आश्रमों का, मनोहर पर्वतों का वर्णन करते, तब सीताजी की बड़ी इच्छा होती कि मैं भी यदि उन आश्रमों का दर्शन कर पाती, यदि उन मनोहारी पर्वतों की सैर कर पाती, तो कैसा आनंद होता ज्यों-ज्यों सीताजी बड़ी होती जाती थीं, त्यों-त्यों उनकी यह इच्छा भी बढ़ती जाती थी। सुंदर बगीचे, लहराते हुए खेत, कलकल करती हुई नदी-हिलोरें लेता हुआ तालाब, कमलों पर भौंरों की गुंजार, ऊँचे-ऊँचे पर्वत, ऋषियों के शांतिमय आश्रम, हरी-हरी दूब का मखमली बिछौना आदि दृश्य देखकर सीताजी का मन बड़ा ही प्रसन्न होता था- उन्हें देखते-देखते उनका जी भरता ही न था। पृथ्वी की सुंदरता से सीताजी को वैसा हो प्रेम था, जैसा कि बेटी को माता से होता है। सोताजी के बराबर पृथ्वीप्रेम और किसी में कभी नहीं देखा गया। जब कभी वे पिता के साथ ऋषियों के आश्रम में जाती थीं, तब उनका जी यही होता था कि इन फले-फूले वृक्षों से भरे वन में पक्षियों की सुरीली बोलियाँ ही सुना करूँ, हिरनियों के साथ उनके बच्चों की क्रीड़ा ही देखा करूँ और इन्हीं तपस्वी महात्माओं की ध र्म-चर्चा सुनते सुनते मैं भी अपने जीवन को धर्ममय बनाऊँ। अस्तु।

इसी तरह दिन-पर-दिन बीतते गए। सभी लोग सीताजी के गुणों की प्रशंसा करते थे, ऋषि-मुनि उनके शुभ लक्षण देख महाराज जनक के भाग्य की सराहना करते थे, धीरे-धीरे

सीताजी ने यौवन की ओर पैर बढ़ाए। दिन-दिन उनका रूप निखरने लगा। गुण भी वैसे-ही-वैसे बढ़ने लगे। सबेरे की ठंडी-ठंडी हवा लगने से जैसे कलियाँ खिलने लगती हैं, वैसे ही सीताजी का हृदय भी खिलने और प्रसन्न होने लगा। अब महाराज जनक को सीताजी के विवाह की चिन्ता सताने लगी। वे दिन-रात इसी उधेड़-बुन में पड़े रहने लगे कि यह सिरस के फूल-जैसी कोमल, लक्ष्मी के समान सुंदर और सरस्वती के समान विदुषी एवं गुणवती कन्या किसे सौंपूँ? एक-एक करके उन्होंने कितने ही राजे-महाराजे और राजकुमारों की बात सोची, पर उन्हें सभी में एक-न-एक दोष दिख ही जाता था। सीताजी की बड़ाई सुनकर कितने ही राजे-महराजे और राजकुमार उनके साथ विवाह की इच्छा से महाराज जनक के पास आते थे, परश महाराज का मन किसी से न भरता था। चिन्ता चौगुनी बढ़ती जाती थी। महाराज दिन-रात यही सोचते रहते थे कि क्या सीता को मेरा मन-चाहा वर न मिलेगा?

उस समय के लोग आँख मींचकर जिस किसी को कन्यादान नहीं कर देते थे। वे कन्या के योग्य वर की खोज में बड़ा परिश्रम करते थे और जब ठीक वर मिल जाता था, तब उसके साथ कन्या का विवाह कर देते थे। कभी-कभी यह बात कन्या के मन पर भी छोड़ दी जाती थी। इसके लिये स्वयंवर-संभा की जाती थी। उपस्थित युवकों में कन्या जिसे श्रेष्ठ रूपवान् तथा गुणवान् समझती, उसके ही गले में जय-माल डाल देती थी। उन दिनों वीरता का बड़ा आदर था। कन्याएँ बहुधा वीर पुरुषों को ही पसंद करती थीं। इसलिये कभी-कभी स्वयंवर सभा में वीर-परीक्षा भी होती थी। जो वीर-परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ निकलता था, वही कन्या-रत्न का स्वामी होता था। महाराज जनक ने भी अन्त में इसी उपाय का आश्रय लिया। उन्होंने निश्चय किया कि भारत में जो पुरुष सबसे अधिक वीर निकलेगा, उसी के साथ सीता का विवाह करूँगा।

एक बार दक्ष प्रजापति ने बड़ी धूमधाम से यज्ञ किया। वे अपने जामाता शिवजी से नाराज थे। इसलिये उन्होंने शिवजी को न्यौता नहीं दिया। शिवजी का अपमान करने के विचार से ही उन्होंने यज्ञ किया था। पर शिवजी की धर्मपत्नी-दक्ष की बेटी सतो देवी-विना न्योता पाए ही पिता के यज्ञ में गईं। वहाँ पिता के मुख से स्वामी की निंदा सुनकर सती देवी ने यज्ञ-कुंड में कूदकर प्राण त्याग दिए। देवता भी इस शिव-विहीन यज्ञ में शामिल हुए थे। जब शिवजी को यह खबर मिली, तब तो उन्हें बड़ा ही क्रोध आया। वे एक बड़ा धनुष लेकर यज्ञ भूमि में पहुंचे और देवताओं को मारने के लिये तैयार हुए। देवता मारे डर के शिवजी की स्तुति करने लगे। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर वह भारी धनुष देवताओं को दे दिया। देवताओं ने वह धनुष जनक के पूर्वपुरुष देवरात को दे दिया था। तब से वह मिथिला की राजधानी में ही रक्खा हुआ था। उसे उठा लेना सहज न था। महाराज जनक ने उस धनुष को बात यादकर प्रतिज्ञा की कि जो पुरुष-सिंह इस विशाल शिव-धनुष की प्रत्यंचा खींचकर इस पर बाण चढ़ा देगा, वही वीर सीता को पा सकेगा। यह खबर बिजली के समान देश-भर में फैल गई।

***

अध्यात्म-रामायण से

राम-कथा

-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की लेखनी से
महावीर मन्दिर द्वारा प्रकाशित

(यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।)

(दूसरा भाग : गतांक से आगे)

अयोध्या-काण्ड

एक दिन नारदने आकर रामसे कहा कि ब्रह्माने मुझे आपके पास भेजकर कहलाया है कि आपका अवतार रावणका वध करनेके लिये हुआ है, किन्तु दशरथ आपका राज्याभिषेक करनेपर तुले बैठे हैं। यदि आप राज्य में आसक्त होकर रावणको नहीं मारेंगे तो पृथ्वीका भार कसे उतरेगा? रामने कहा कि मैं सब जानता हूँ। मैं कल ही रावणका वध करनेके लिये दण्डकारण्य चला जाऊँगा और वहाँ चौदह वर्षोंतक रहकर सीता-हरणके बहाने मैं उसे कुटुम्ब-सहित नष्ट कर डालूँगा।

रामको युवराज बनानेका प्रस्ताव

एक दिन राजा दशरथने अपने कुलगुरु वशिष्ठसे कहा कि मैं बहुत वृद्ध हो चला हूँ, इसलिये मै चाहता हूँ कि रामको युवराज पदपर अभिषिक्त कर दूं क्योंकि सभी लोग रामकी प्रशंसा किया करते हैं। आप अभिषेककी सामग्री एकत्र कराकर रामको जाकर उपदेश देते आइए। दशरथने सुमन्त्रको बुलाकर आज्ञा दी कि वशिष्ठजीसे पूछकर सब सामग्री एकत्र कर डालो।

वशिष्ठने रामसे आकर कहा कि आपने देवताओंका कार्य सिद्ध करने और रावण का वध करनेके लिये अवतार लिया है। पुरोहिताईका काम अत्यन्त निन्दनीय जानकर भी मैंने यह कार्य इसलिये स्वीकार कर लिया था कि इक्ष्वाकु-वंशमें आप अवतार लेंगे। दशरथने कहा है कि कल

वे आपको राजपदपर अभिषिक्त कर देंगे। अतः, आप सीता-सहित विधिपूर्वक उपवास और व्रत करते हुए पृथ्वीपर राज्य कीजिए।

यह कहकर वशिष्ठ तो चलते बने। तब रामने लक्ष्मणसे कहा कि कल मेरा युवराज-पदपर अभिषेक होगा, किन्तु सारा कार्यभार तो तुम्हीं को सँभालना पड़ेगा। यह समाचार नगरमें फैलते ही सब लोग हर्षित होकर नगर सजाने लगे।

कौशल्या और सुमित्राको भी यह समाचार मिल तो गया पर कौशल्याने कहा कि राजा दशरथ सत्यवादी तो हैं, पर वे बड़े कामी और कैकेयीके वशमें है। ऐसी अवस्थामें क्या वे अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर पावेंगे?

रामको वनवास

उसी समय देवताओंने सरस्वतीसे आग्रह किया कि तुम जाकर रामके राज्याभिषेकमें विघ्न खड़ा कर आओ। इसके लिये पहले तुम मन्थरामें प्रवेश करना, फिर कैकेयीमें। तदनुसार सरस्वतीने मन्थरामें जा प्रवेश किया। शरीरके तीन स्थानोंपर टेढ़ी कुबड़ी मन्थराने जब नगरमें उत्सव होते देखा और सुना कि कल रामका राज्याभिषेक होनेवाला है तब तो वह जल-भुनकर राख हो गई और झट कैकेयीके पास जाकर बोली- अरी अभागिनी! तू सोई क्या पड़ी है? तेरे लिये तो बड़ा संकट आ खड़ा हुआ है। तू जो अपनी सुन्दरताका घमण्ड लिए फिर रही है उसके मदमें तू अपना कुछ आगा-पीछा नहीं सोच रही है। जानती है? कल रामका राज्याभिषेक होनेवाला है।श यह सुनते ही कैकेयीने अपना रत्न-जटित नूपुर मन्थराको देते हुए कहा -'ले, यह ले। यह तो बड़े आनन्दकी बात है। इसमें संकटकी क्या बात है? राम तो भरतसे भी बढ़कर मेरा आदर करते हैं और मुझे कौशल्याके समान ही मानकर सदा मेरी सेवा करते रहते हैं।' यह सुनकर मन्थरा तमककर बोली- 'यही तो तू समझती नहीं।

यह सचमुच तेरे लिये वड़ा भारी संकट है। राजा तुझे तो फुसलाए रखनेके लिये चिकनी-चुपड़ी बातें बना जाते हैं और काम करते हैं रामकी माताका ही। उन्होंने चाल चलकर तेरे पुत्र भरतको तो शत्रुघ्नके साथ ननिहाल भेज दिया और इधर गुपचुप रामका राज्याभिषेक रच डाला। अब या तो भरतको रामका दास होकर रहना पड़ेगा या उन्हें देशसे निकाल बाहर किया जायगा। रही तुम ! तुम दासी बनकर कौशल्याके पैर दबाया करना। इसलिये मेरी मानो तो तुम भरतके लिये राज्याभिषेक और रामके लिये चौदह वर्षका वनवास करानेका जतन कर डालो। देखो, देवासुर-संग्राममें जब राक्षसोंसे लड़ते समय महाराज दशरथके रथकी धुरीकी कील टूटकर गिर गई थी, तब तुमने धैर्यपूर्वक अपना हाथ उस कीलके छेदमें डाल दिया था। युद्ध समाप्त होनेपर दशरथने यह देखकर आश्चर्यचकित होकर तुमसे दो वर माँगनेको कहा था। वे तुमने उनके पास धरोहर रख दिए थे। अब तुम तत्काल कोप-भवनमें अपने सारे आभूषण इधर-उधर छितराकर जा लेटो और जबतक राजा सच्ची प्रतिज्ञा न कर लें तबतक तुम टस-से-मस न होना। मन्थराकी बात कैकेयीको ठीक जेंच गई और वह अपने बाल बिखेरकर और गहने इधर-उधर फेंककर कोप-भवनमें जा लेटी।

प्रजा और मन्त्रियोंको रामके अभ्युदयके लिये आज्ञा देकर जब दशरथ राजभवन में पहुंचे तब यह जानकर वे बहुत सकपका गए कि कैकेयी कोपभवनमें जा लेटी है। दशरथ वहाँ पहुँचकर उसके शरीरको धीरे धीरे सहलाते हुए बोले कि तुम इस प्रकार क्यों आ पड़ी हो? बोलती क्यों नहीं? तुम जो कहोगी तुम्हारी सब इच्छा मैं पूर्ण करूँगा। जिसने तुम्हारा कुछ अनिष्ट किया है उसे मैं अभी दण्ड दिए डालता हूँ। जिस कंगालको कहो उसे घनी और जिस धनपतिको कहो उसे कंगाल बना दूँ। जिस अवध्यको कहो मार डालू और जिस वध्यको कहो छोड़ दूं? तुम्हारे लिये तो मैं अपने प्राण-तक दे डाल सकता हूँ। मैं अपने प्राणोंसे प्यारे रामकी शपथ ले कर कहता हूँ कि तुम्हें जो कुछ प्रिय होगा मैं वही करूंगा। जब दशरथने रामकी सौगन्ध खा ली तब तो कैकेयी उठ खड़ी हुई और अपने आँसू पोंछती हुई बोली-श्देवासुर-संग्रामके समय आपने जो दो वर देनेको कहे थे उनमेंसे एकसे तो तुरन्त मेरे प्रिय पुत्र भरतको इस समस्त सामग्रीसे युवराज-पदपर अभिषिक्त कर दीजिए और दूसरे वरसे तुरन्त रामको दण्डकवन भेज दीजिए जहाँ वे मुनिवेश बनाकर चौदह वर्षोंतक रहें। उसके पश्चात् वे चाहे अयोध्या चले आवें, चाहे वनमें रहें। किन्तु कल सबेरे ही वे अवश्य वनको चले जायें। यदि इसमें कुछ भी देर हुई तो मैं आपके सामने ही प्राण दे डालूंगी। आप अपनी प्रतिज्ञा सत्य करके मेरा यही प्रिय कार्य कर दीजिए।

यह सुनना था कि दशरथ वज्रसे तोड़े हुए पर्वतके समान धड़ामसे गिर पड़े और फिर भयपूर्वक मन ही मन कहने लगे कि यह मैं कोई दुःस्वप्न देख रहा हूँ या मेरे चित्तको कुछ भ्रम हो गया है? फिर सामने सिंहिनीके समान बैठी हुई कैकेयीसे वे कहने लगे- 'तुम ये मेरे प्राण हरनेवाले वचन क्यों बोल रही हो? रामने भला तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम तो रात-दिन मेरे सामने उनके गुण ही गुण गाती रहती थी फिर आज तुम्हें क्या हो गया है कि ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रही हो? तुम्हें अपने पुत्रके लिये राज्य लेना ही तो ले लो, किन्तु रामको क्यों वनवास दिए डाल रही हो ? रामसे भला तुम्हें क्या भय हो सकता है?' यह कहकर वे आर्त होकर कैकेयीके चरणों में जा गिरे। कैकेयीने आँखें तरेरकर कहा- 'क्या तुम्हारी कुछ बुद्धि उलट गई है जो ऐसी बातें बोल रहे हो? यह समझ लो कि यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञा भंग की तो तुम्हें रौरव नरक भोगना पड़ जायगा। यदि कल प्रात काल मृगचर्म और वल्कल पहनकर राम वनको नहीं चले जाते हैं तो तुम्हारे सामने ही मैं फाँसी लगाकर या विष खाकर मर जाऊँगी। तुम अपनेको सत्यप्रतिज्ञ कहकर आजतक संसारको धोखेमें डालते रहे और अब रामकी शपथ खाकर भी अपनी प्रतिज्ञा तोड़े डाल रहे हो। अतः, तुम्हें नरकमें जाना ही पड़ेगा।'

कैकेयीकी ये तीखी बातें सुनकर तो दशरथ ऐसे मूच्छित हो गिरे कि उनकी वह रात एक वर्षके समान बीती। प्रातःकाल जब गायक और वन्दीजन यथानियम स्तुति करने लग रहे थे तब कैकेयीने झिड़ककर उन सबको रोक दिया और क्रोधमें भरी फिर वहीं आ बैठी। बाहर सभी लोग मंगल प्रभातकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इतनेमें सुमन्त्रने जयजयकारके साथ आकर महाराज दशरथको प्रणाम किया और कैकेयीसे सब समाचार पूछा। कैकेयीने कहा कि आज रातभर महाराजको नोंद नहीं आई है। वे रातभर श्राम-रामश रटते रहे हैं। तुम झटपट रामको यहाँ बुला लाओ। सुमन्त्रने कहा

कि महाराज की आज्ञा पाए बिना मैं कैसे जा सकता हूँ। तब दशरथने स्वयं कहा कि तुम तत्काल रामको ले आओ। तदनुसार सुमन्त्र जाकर रामको ले आए। रामको देखते ही वे उठकर 'हा राम! हा राम!' कहते हुए गिर पड़े। रामने हाहाकार करते हुए शीघ्रतासे उन्हें अपनी गोदमें उठा बैठाया। महाराजको मूच्छित देखकर तो रनिवासमें कुहराम मच गया। यह रोना-पीटना सुनकर तो वसिष्ठ भी वहाँ चले आए। रामके पूछनेपर कैकेयीने कहा कि महाराज तुम्हारे कारण ही दुखी हैं। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, महाराजको भी तुम सत्यवादी बनाओ। उन्होंने मुझे दो वर देनेके लिये कहा था। रामने कहा- देखिए, जो पुत्र पिताकी आज्ञाके बिना उनका कार्य करता है, वह उत्तम है, जो कहनेपर करता है, वह मध्यम है और जो कहनेपर भी नहीं करता वह विष्ठाके समान निकृष्ट है। मैं पिताजीके लिये जीवन दे सकता हूँ, भयंकर विष पी सकता हूँ, सीता, कौशल्या तथा राज्यको भी छोड़ सकता हूँ

पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम्।
सीतां त्यक्षेऽथ कौसल्यां राज्यं चापि त्यजाम्यहम्॥

अनाज्ञप्तोऽपि कुरुते पितुः कार्यं च सोत्तमः।
उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः॥

उक्तोऽपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उच्यते।
अतः करोमि तत्सर्वं यन्मामाह पिता मम॥ .
सत्यं सत्यं करोम्येव रामो द्विर्नाभिभाषते।

पिताजीने मेरे लिये जो आज्ञा दी है उसे मैं अवश्य पूर्ण करूंगा क्योंकि राम कभी दो बात नहीं कहता। यह प्रतिज्ञा सुनकर कैकेयीने अपने दोनों वर उन्हें कह सुनाए। रामने कहा-श्भरत आनन्दसे राज्यका भोग करें। मैं अभी दण्यकारण्यको चला जाताहूं। किन्तु मेरी यह समझमें नहीं आता कि महाराज मुझसे कुछ भी कह क्यों नहीं रहे हैं। यह सुनकर दशरथने अत्यन्त दुःखके साथ कहा- 'राम! मुझ स्त्री-परवश, भ्रान्तचित्त और कुमार्गगामी पापात्माको बाँधकर तुम यह राज्य ले लो। इससे तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा। ऐसा होनेपर मैं भी असत्यसे बच जाऊँगा।' यह कहकर राजा दशरथ 'हा! राम, हा! जगन्नाथ' कहकर रामको गले लगाकर विलाप करने लगे। तब रामने हाथमें जल लेकर पिताके आँसू पोंछे और अपने पितासे कहा कि यदि मेरा छोटा भाई भरत राज्य-शासन करता है तो इसमें दुःखकी क्या बात है? मैं भी आपकी प्रतिज्ञाका पालन कर चुकनेपर आपके पास अयोध्या लौट ही आऊंगा। वन में रहकर तो मुझे राज्यसे भी करोड़ गुना सुख मिलेगा। इससे आपके सत्यकी भी रक्षा होगी, देवताओंका कार्य भी सिद्ध होगा और माता कैकेयीका भी हित होगा। मैं माता कौशल्याको सान्त्वना देकर और सीताको समझा-बुझाकर अभी चला आता हूँ और आपके चरणोंमें प्रणाम करके आनन्दपूर्वक वनको चला जाता हूँ।

यह कहकर उन्होंने पिताकी परिक्रमा की और अपनी मातासे मिलने चले गए। जब राम

कौशल्याके पास पहुंचे तब वे पूजा कर रही थीं। सुमित्रासे रामके आनेका समाचार पाकर उन्होंने देखते ही रामको गले लगाकर गोदमें बैठा लिया और पूछा- 'बेटा! भूख लगी होगी, कुछ मिष्टान्न खा लो।' रामने कहा कि अब भोजन करनेका समय नहीं है क्योंकि मुझे शीघ्र ही दण्डकारण्य जाना है। मेरे सत्यसन्ध पिताने माता कैकेयीको वर देकर भरतको राज्य और मुझे वनवास दिया है जहाँ मुनि-वेशमें चौदह वर्ष रहकर मैं शीघ्र लौट आऊँगा। आप चिन्ता न करें। यह सुनकर तो कौशल्या अचेत हो गई, और चेत आनेपर वे अत्यन्त दुःख के साथ बोलीं- 'यदि तुम वन जाते हो तो मुझे भी साथ लेते चलो। भरतको राजा राज्य देना चाहते हों तो भले ही दें पर तुम्हें क्यों वन भेजे दे रहे हैं? कैकेयीको महाराज अपना सर्वस्व देना चाहें तो दे डालें किन्तु तुमने उनका और कैकेयी का क्या बिगाड़ा है? यदि पिताने तुम्हें वन जानेको कहा है तो मैं माता तुम्हें रोकती हूं। यदि मेरी बातका उल्लंघन करके तुम राजाकी आज्ञासे वनको गए तो मैं प्राण दे डालूंगी।'

कोशल्याकी बात सुनकर लक्ष्मणने रामकी और देखकर क्रोधके साथ कहा -'मैं उस उन्मत्त, भ्रान्तचित और कैकेयीके वशवर्ती राजा दशरथको बाँधकर भरतको उनके सहायक मामा आदिके साथ मारे डालता हूँ। आप अभिषेककी तैयारी कीजिए। उस में जो भी विध्न डालेगा, उसे मैं वहीं ढेर कर डालूँगा।' रामने लक्ष्मणको भली-भाँति समझाया कि इस सबका अब समय नहीं है। यदि राज्य और देह कुछ भी सत्य होता तो तुम्हारी बात ठीक होती किन्तु ये सब तो क्षणिक हैं।श इस प्रकार संसारकी अनित्यता दिखाकर रामने लक्ष्मणको बहुत समझाया और फिर माताको भी समझाते हुए कहा कि 'चौदह वर्ष की अवधि भी कोई अवधि है? यह तो पलक मारते बीत जायगी।' तब माता कौशल्याने उन्हें उठाकर गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर बिदा कर दिया। लक्ष्मणने भी जब चलने के लिये आग्रह किया तब रामने कहा- तो चलो, देर न करो। तब वे सीताको समझाने के लिये अपने भवन में जा पहुँचे। रामको अकेले आते देखकर सीताको विस्मय हुआ और उनके पूछनेपर रामने मुसकराकर कहा- पिताजीने मुझे दण्डकारण्यका सारा राज्य दे दिया है जिसका पालन करनेके लिये मैं आज ही वनको चला जा रहा हूँ। तुम अपनी सासके पास रहकर उनकी सेवा करती रहना। सीताने व्याकुल होकर जब कारण पूछा तो रामने सारी कथा कह सुनाई और समझाया कि मैं शीघ्र ही आया जाता हूँ, तुम कोई बखेड़ा न खड़ा कर देना। सीताने प्रसन्न होकर कहा- ठीक है, वनको मैं पहले जाऊँगी, आप पीछे आते रहिएगा। रामने उन्हें समझाते हुए कहा- 'व्याघ्र आदि भयंकर पशु, राक्षस और हिंस्र जीवोंसे भरे वनमें भला मैं तुम्हें कैसे ले चलूंगा? फिर वहाँ खानेको भी कड़वे और खट्टे कन्द-मूल मिलते हैं, और वे भी सदा नहीं मिलते, कभी-कभी मिलते हैं तो मिल जाते हैं। फिर वहाँ भी सब ऋतुओंमें चलना पैदल ही पड़ता है।'

यह सुनकर सीताने दुःखपूर्वक कहा- 'आपके साथ रहते हुए भला मेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है? आपके भोजनसे बचे हुए फल-मूल मेरे लिये अमृत होंगे। बचपन में एक महात्माने मुझसे कहा भी था कि तुझे अपने पतिके साथ वनमें जाना पड़ जायगा। आपने भी ब्राह्मणोंके

मुखसे बहुतसे रामायण सुने होंगे। क्या उनमें से किसी में भी सीताके बिना राम वनको गए हैं? यदि आप मुझे छोड़कर गए तो मैं अभी आपके सामने ही प्राण दे डालँगी।'

सीताका यह दृढ निश्चय देखकर रामने उन्हें भी साथ चलनेकी आज्ञा दे दी और कहा कि ये सारे आभूषण देवी अरुन्धतीको दे डालो और हम भी अपना सारा धन ब्राह्मणोंको बांटकर ही वनको चलेंगे। यह कहकर उन्होंने अपना सारा धन ब्राह्मणों और सेवकोंको बाँट दिया। लक्ष्मण भी सुमित्राको कौशल्याके हाथ सौंपकर और हाथमें धनुष लेकर रामके सामने आ खड़े हुए। राम, लक्ष्मण और सीता तीनों महाराज दशरथके पास जा पहुँचे।

उनको पैदल जाते देखकर लोग दुखी होकर कैकेयीको ऊँच-नीच सुनाने, जी भरकर कोसने और बुरा-भला कहकर धिक्कारने लगे। तब मुनि वामदेवने आकर उन्हें समझाया कि राम तो साक्षात् नारायण हैं, जानकी लक्ष्मी हैं, लक्ष्मण शेष हैं। ये ही समय-समयपर मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुरामका रूप लेकर पृथ्वीका भार उतारते रहे हैं। वे ही अब रामके रूपमें प्रकट होकर रावण आदि दुष्टोंका वध करेंगे। तुम लोग चिन्तामें क्या घुले जा रहे हो ? वामदेवके बहुत समझानेपर ही कहीं लोगोंका संशय दूर हो पाया।

लक्ष्मण तथा मीताके साथ पिताके भवन में पहुंचकर महात्मा रामने कैकेयीसे कहा-'माताजी! आपके कथनानुसार हम तीनों वन जानेके लिये तैयार होकर आ गए हैं। अब शीघ्र ही पिताजीसे कहिए कि हमें आज्ञा दें। यह सुनकर कैकेयीने सहसा उठकर राम, लक्ष्मण और सीताको वल्कल वस्त्र ला थमाए। राम और लक्ष्मणने तो अपने राजसी वस्त्र उतार उतारकर वल्कल वस्त्र पहन लिए किन्तु सीता तो पहनता जानती नहीं थीं, वे उन्हें हाथमें लिए रामकी ओर देखने लगीं। तब रामने वे चीर सीताके वस्त्रोंपर ही लपेट दिए। यह देखकर तो रनिवासकी सारी स्त्रियाँ हाहाकार करके चीत्कार कर उठीं। उसी समय वसिष्ठने आकर कैकेयीको डाँटते हुए कहा-श्अरी पापिनी! तूने तो केवल रामको वन जानेका वर मांगा है फिर सीताको वल्कल वस्त्र क्यों दिए दे रही है ? यदि सीता भक्तिपूर्वक रामके साथ जाना ही चाहती हैं तो वे समस्त आभूषणों और दिव्य वस्त्रोंके साथ ही जायंगी, वल्कल पहनकर नहीं।'

महाराज दशरथने सुमन्त्रको बुलाकर कहा कि इन्हें रथपर चढ़ाकर ही वनको ले जाओ। यह कहकर वे राम, लक्ष्मण, सीताको देखकर धरतीपर गिर पड़े और फुक्का फाड़कर रोने लगे। जब सुमन्त्र रथ ले आए तब पहले सीता रथपर चढ़ी, फिर पिताकी परिक्रमा करके राम चढ़े और फिर दो खड्ग और दो धनुष लेकर लक्ष्मण चढ़ गए। राजा दशरथ, 'ठहरो-ठहरो' कहते ही रह गए किन्तु रामके कहनेपर सुमन्त्रने रथ हाँक ही दिया। दशरथ मूच्छित होकर गिर पड़े और सारे पुरवासी 'ठहरो, मत जाओ' कहते हुए उनके पीछे दौड़ चले। .

बहुत देरतक रोते रहने के पश्चात् दशरथने सेवकोंसे कहा कि मुझे कौशल्याके भवन में लिवा ले चलो। वहाँ पहुंचकर पहले तो वे अचेत होकर धरतीपर गिरे पड़े रहे, फिर उठकर बहुत देरतक नीचा मुंह किए चुपचाप बैठे रहे।

क्रमशः अगले अंक में

मन्दिर समाचार

मार्च, 2020 में कोरोना वायरस के प्रकोप से विश्वस्तर पर महामारी की स्थिति फैल गया। इटली, अमेरिका आदि उन्नत देशों में इससे मरनेवालों की संख्या हजारों में पहुँच गयी। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने माना कि यह बीमारी स्पर्श के द्वारा, छींक आदि के कारण मुँह नाक आदि से निकले जलकणों के द्वारा एक-दूसरे व्यक्ति में फैलता है। अत: Social distancing (सामाजिक दूरी), वस्तुत: Physical distancing (शारीरिक दूरी) बनाये रखने की अपील की गयी। भारत में इस महामारी से निबटने के लिए केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार लोगों से अपील की कि वे अपने घरों से न निकलें। दिनांक 22 मार्च, 2020 ई. रविवार को जनता कर्फ्यू लगाने का आह्वान किया गया। लेकिन इसी दिन से अध्यादेश जारी कर पूरे भारत में घरों से निकलने पर रोक लगा दी गयी। केवल आवश्यक सेवाएँ ही चालू रखी गयी। बिहार में सभी मन्दिरों को बन्द करने का निर्देश बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के द्वारा दिनांक 21 मार्च को जारी किया गया।

बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद द्वारा जारी दिशा-निर्देश

आज पूरा विश्व करोना महामारी की चपेट में है। विश्व के विभिन्न देशों में लगभग 10 हजार व्यक्ति से अधिक की मौत हो चुकी है। यह सौभाग्य का विषय है कि हमारी सरकार द्वारा समय रहते जनता में जागरूकता तथा उक्त बीमारी से बचाव के संबंध में ठोस कदम लिया गया है। जिसमें बहुत बड़ा सराहनीय योगदान, समाचार पत्रों, मिडिया, टी. वी., के विभिन्न चैनलों का है। यह सन्तोष का विषय है कि अभी हमारे प्रदेश में उक्त वायरस का एक भी पोजिटिव लक्षण किसी बिहारवासी में नहीं पाया गया है. परन्तु फिर भी सचेत रहने की आवश्यकता है।

इसी आलोक में पर्षद में निबंधित लगभग 4,500 धार्मिक स्थल, कबीर मठ, राम जानकी मन्दिर/ठाकुरबाड़ी. शिव मन्दिर, हनुमान मन्दिर, काली मन्दिर, सूर्य मन्दिर आदि के न्यासी/ महन्त, पुजारी, न्यास समिति के सदस्यों को निर्देश दिया जाता है कि दिनांक- 31.03.2020 तक किसी भी धार्मिक परिसर में कोई उत्सव/आयोजन यथा-चौत नवरात्री, चैती छठ, का आयोजन नहीं किया जायेगा। मन्दिर में केवल महन्त या पुजारी भगवान की आरती, राग-भोग और नियमित पूजा-पाठ अधिक से अधिक तीन व्यक्ति की उपस्थिति में ही सम्पादित करेंगे, तत्पश्चात मन्दिर की सभी कार्रवाई प्रतिदिन बन्द रहेगी।

क्योंकि हम अपने को सुरक्षित रखेगे तो हमारा परिवार सुरक्षित होगा और परिवार सुरक्षित होगा तो समाज सुरक्षित होगा और समाज सुरक्षित रहने पर ही प्रदेश और देश की सुरक्षा इस महामारी से हो सकती है सभी व्यक्तियों को पानी को कपड़े से छानकर, बाजार में उपलब्ध मास्क का प्रयोग, सोने के कम से कम तीन घंटे पूर्व भोजन तथा अभक्ष पदार्थ जैसे शराब, मांसाहार का प्रयोग नहीं कर, इस बीमारी से बचाव किया जा सकता।

बिहार के विभिन्न जिलों से लोग ट्रेन, बस, आदि का प्रयोग कर पर्षद पहुँचते है। अत: सुरक्षा की दृष्टि से दिनांक-21.03.2020 से 31.03.2020 तक पर्षद में संचिका की सुनवाई को स्थगित कर दिया गया है तथा उक्त तिथि पर किसी भी पक्ष को पर्षद में आने की आवश्यकता नहीं है। उक्त तिथियों पर सुनवाई की संचिका के संबंध में निबंधित डाक द्वारा अग्रिम तिथि की सूचना पक्षों को दें दी जायेगी।

(अखिलेश कुमार जैन)

अध्यक्ष, बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद

पुनः दूसरी बार 21 दिनों तक के लिए लॉकडाउन की घोषणा केन्द्र सरकार के द्वारा की गयी। फिर तीसरी बार इसकी अवधि बढ़ाकर 3 मई तक किया गया है।

महावीर मन्दिर में रामनवमी की पूजा

महावीर मन्दिर के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि रामनवमी की पूजा में कोई भक्त सम्मिलित न हुए हों। लॉकडाउन की इसी स्थिति में महावीर मन्दिर में रामनवमी मनायी गयी, जिसमें महावीर मन्दिर में रह रहे अनिवार्य पुजारियों के द्वारा परमाचार्य की उपस्थिति में रामनवमी की पूजा हुई तथा महावीरजी का ध्वज बदला गया।

महावीर मन्दिर में Infrared Thermal Detector लगाया गया

दिनांक 19-02-2020 को कोरोना वायरस के प्रति जागरूकता अभियान के तहत महावीर मन्दिर ने परिसर में Infrared Thermal Detector संयन्त्र लगाया गया, जिससे आनेवाले श्रद्धालु के शरीर का तापमान मापा गया और तापमान की बढोत्तरी के लक्षण दिखाई देने पर उन्हें कोरोना की जाँच के लिए प्रेरित किया गया। पटना मेडिकल कालेज हॉस्पीटल के द्वारा जारी किये गये फोन नं. पर सूचना देने की घोषणा की गयी। इस मशीन विना स्पर्श किये हुए दूसरे व्यक्ति के शरीर का तापमान माप करने में सक्षम होता है। इस प्रकार मन्दिर में आनेवाले सभी श्रद्धालुओं के शरीर का तापमान मापा गया।

मन्दिर परिसर को सेनेटाइज करने के लिए एक एजेंसी के साथ अनुबन्ध किया गया, जो समय-समय पर मन्दिर को रासायनिक रूप से सेनेटाइज करती रही तथा मन्दिर में प्रवेश करनेवाले सभी लोग डेटॉल हैंडवाश से हाथ की सफाई करें, इसका ध्यान रखती रही। मन्दिर में जगह-जगह पर सूचना चिपका दी गयी कि अनावश्यक रूप से रेलिंग इत्यादि को न छुएँ, यह संक्रमण का कारक हो सकता है। मन्दिर ने परिसर को कोरोना वायरस से बचाव के लिए हर प्रकार की सुविध ा उपलब्ध करायी गयी, जिसका उपयोग लोगों ने किया।

दिनांक 20 मार्च को महावीर मन्दिर की ओर से भक्तों से अनुरोध जारी किया गया कि कोरोना वायरस बीमारी का व्यापकता को देखते हुए मन्दिर कम से कम संख्या में लोग आयें। इसके लिए मन्दिर के द्वारा जिओ टी.वी. चैनल पर ऑनलाइन दर्शन के लिए प्रेरित किया गया। नैवेद्यम् प्रसाद चढाकर उनके घर पहुँचाने की भी व्यवस्था की गयी। दिनांक 21 मार्च को 60 व्यक्तियों ने नैवेद्यम् लड्डू की बुकिंग करायी, दिन्हें उनके घर भिजवाने की व्यवस्था की गयी। बच्चों के लिए जन्ममंगलानुष्ठान के कर्मकाण्ड हेतु मन्दिर की ओर से पुरोहित उपलब्ध कराने की घोषणा की गयी। इस प्रकार लोगों को कम से कम संख्या में आने के लिए प्रेरित किया गया।

दिनांक 22 मार्च को बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के निर्देश के आलोक में महावीर मन्दिर को भी लॉकडाउन के तहत बंद कर दिया गया।

मुख्यमंत्री आपदा राहत कोष में 1 करोड़ रुपए की सहयोग राशि

दिनांक 26 मार्च को महावीर मन्दिर न्यास, पटना ने मुख्यमंत्री आपदा राहत कोष में १ करोड़ रुपए की सहयोग राशि कोरोना वायरस की विभीषिका को समूल नष्ट करने एवं गरीबों को भोजन सुलभ कराने की सरकारी योजना को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से दिया। साथ ही यह भी घोषणा की गयी कि कोरोना वायरस के दमन तथा गरीबों को भोजन उपलब्ध कराने हेतु और भी कोई जवाबदेही मिलती है तो उसका पालन महावीर मन्दिर न्यास सहर्ष एवं पूरी तत्परता के साथ करेगा।

मन्दिर में जलाये गये घी के 108 दीपक

कोरोना वायरस के संकट की घड़ी में सबसे आवश्यक है कि हम सभी भारतवासी एकजुट होकर रहें। साथ ही, इस रोग के प्रसार से निबटने और इसके प्रभाव को कम करने में देश के चिकित्सक, हमारे अन्य भाई-बन्धु जो अपनी जान की परवाह न करते हुए इस संकट की घड़ी में दिन-रात एक करते हुए लगे हुए हैं, उनके प्रति आभार प्रकट करना, उनका उत्साह बढ़ाना भी हमारा कर्तव्य हो जाता है। इसी आशय से प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदीजी के आह्वान पर रात्रि 9.00 बजे प्रत्येक घर के बाहर दीपक जलाने का आयोजन किया गया था।

महावीर मन्दिर पटना के परिसर में भी लॉकडाउन के बावजूद, मन्दिर के परिसर में रह रहे पुजारियों के द्वारा रात्रि 9 बजे 108 घी के दीपक जलाये गये। महावीर हनुमानजी के परिसर में जलते हुए ये दीपक अपनी आध्यात्मिक शक्ति से हमें अवश्य आलोकित करेंगे तथा तमसो मा ज्योतिर्गमय की वैदिक प्रार्थना को साकार करेंगे।

महावीर मन्दिर के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने बतलाया है कि रात्रि 9 बजे 108 घी के दिये जलाये गये। उन्होंने सभी इसके माध्यम से सभी को शुभकामना दी है कि हनुमानजी की कृपा से सभी लोग शीघ्र इस संकट से उन्मुक्त हों। उन्होंने कहा है कि कोरोना वायरस से बचाव कार्य में लगे सभी कर्मियों को हनुमानजी की कृपा से असीम शक्ति मिलेगी और वे स्वयं सुरक्षित रहते हुए दूसरों को सुरक्षित रखेंगे।

राम-रसोई की ओर से अयोध्या एवं फैजाबाद में जरूरतमंद और भूखे लोगों को भोजन

महावीर मन्दिर न्यास ने बिहार मुख्यमन्त्री राहत सहायता कोष में एक करोड़ रुपये देने के अतिरिक्त स्थानीय प्रशासन के सहयोग से अयोध्या एवं फैजाबाद में जरूरतमंद और भूखे लोगों को भोजन कराया गया। प्रत्येक दिन स्थानीय प्रशासन राम-रसोई के प्रबन्धक श्री पी. ज्ञानेन्द्र, जो तिरुपति के हैं, उन्हें व्यक्तियों की संख्या जिन्हें अगले दिन खिलानी होती थी तथा वे जहाँ रह रहे थे, बता देते थे। इसके अनुसार अयोध्या स्थित अमावा राम मन्दिर में स्थित राम-रसोई में स्वादिष्ट एवं पर्याप्त भोजन तैयार किया गया। स्थानीय प्रशासन की ओर से दो गाड़ियाँ मन्दिर तक आतीं रहती थी और इन दो गाड़ियों में भोजन चढा दिये जाते थे। पके हुए भोजन के पैकेट पंकज कुमार की देखरेख में राम-रसोई के कर्मचारियों के द्वारा स्थानीय प्रशासन के अधिकारियों की

उपस्थिति में जरूरतमंद लोगों के बीच बाँटे जाते थे और बाँकी जो भोजन फैजाबाद और उसके आसपास के जरूरतमंदों के लिए होते थे वे जिला प्रशासन के अधिकारियों के द्वारा बाँटे जाते थे। प्रत्येक दिन अयोध्या राहत कार्य के प्रभारी पदाधिकारी महावीर मन्दिर न्यास के नाम से एक प्रमाणपत्र जारी करते थे, जिसमें महावीर मन्दिर की इस ईकाई के द्वारा राम-रसोई के में तैयार तथा बाँटे गये भोजन के पैकेट की संख्या का उल्लेख होता था। जब से लॉकडाउन की घोषणा हुई इसके ठीक बाद से इस कार्य को आरम्भ किया गया। कोरोना वायरस के प्रकोप के कारण राम-रसोई का कार्य बंद कर दिया गया था, लेकिन वे ही कर्मचारी इस कार्य के लिए उपयोग में लाये गये। फलतः दिनांक 17 अप्रैल तक लगभग 30,000 व्यक्ति वहाँ खिलाये जा चुके थे। यह पूरे जिला में सबसे बड़ा जनहित-कार्य करनेवाली संस्था के रूप में उभर कर सामने आयी।

महावीर कैंसर संस्थान के बाह्य रोगी विभाग के रोगियों और उनके परिचारकों को निःशुल्क भोजन

अनेक भक्तों पूछा था कि महावीर मन्दिर न्यास बिहार में इस प्रकार का जनहित कार्य क्यों नहीं कर रहा है। संबद्ध अधिकारियों ने आश्वस्त किया था कि समय आने पर यह कार्य किया जायेगा। न्यास इसकी प्रतीक्षा में था। फिर भी, न्यास ने महावीर कैंसर संस्थान के सभी बाह्य रोगी विभाग के सभी रोगियों और उनके परिचारकों को निःशुल्क भोजन देने का कार्य आरम्भ किया है। पहले सभी भरती हुए रगियों तथा उनके परिचारकों को निःशुल्क भोजन दिये जाते थे। अब बाह्य रोगियों और उनके परिचारकों को भी यह सुविधा दी गयी। दिनांक 16 अप्रैल को एक दिन में भोजन के 800 पैकेट बाह्यरोगी विभाग के रोगियों तथा उनके परिचारकों के बीच बाँटे गये। इस दौरान स्थानीय पुलिस दूरी बनाये रखने तथा परिसर में विधि-व्यवस्था बनाये रखने के लिए उपस्थित रही।

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला अंक गंगा-विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। गंगा सनातन धर्म में ध्वजवाहिनी के रूप में प्रवाहित रही है। सनातन धर्म के तीन गकारादि स्तम्भ गंगा, गौ एवं गीता का महत्त्व हम सभी जानते हैं। ज्येष्ठ मास में गंगा-दशहरा का प्रतिष्ठित अवसर उपस्थित है, इस अवसर पर सनातन धर्म, लोक-जीवन अथवा धार्मिक-साहित्य में गंगा से सम्बन्धित आलेख आमन्त्रित हैं। सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com पर अथवा whatsApp. सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

पर्व-त्योहार

(वैशाख, 2077 वि. सं., 9 अप्रैल से 7 मई, 2020)

मेषसंक्रान्ति पुण्यकाल, 13 अप्रैल, 2020,

आज के दिन सूर्य मेष राशि में प्रवेश कर रहे हैं। इसी दिन से 1942 शक संवत् का आरम्भ हो रहा है। इस संक्रान्ति का पुण्यकाल अर्थात् दान आदि के लिए उचित समय 12 बजे दिन से सूर्यास्त तक है। मेष संक्रान्ति के सभी पूजा-पाठ सम्बन्धी कृत्य इसी दिन होंगे। इस दिन जल भरा घड़ा, पंखा आदि दान करने का विधान है।

आर्यभट-जयन्ती, 13 अप्रैल, 2020

देश के महान् गणितज्ञ आर्यभट के जन्मदिन के अवसर पर उनकी जयन्ती मनायी जाती है।

मेषसंक्रान्ति, जूड़शीतल, (मिथिला), 14 अप्रैल, 2020

भारत के भिन्न-बिन्न राज्यों में इस पर्व को अलग-अलग नामों से जाना जाता है- ओडिशा में पना संक्रांति, तमिलनाडु में पुथांदु, पश्चिम बंगाल में पोइला बैसाख, आसाम में बोहाग बिहू, पंजाब में वैशाख, केरल में विशु। मिथिला में इसे जूड़शीतल कहा जाता है तथा बिहार के अन्य स्थानों पर सतुआनी कहते हैं। इस दिन सभी स्थानों पर सत्तू, गुड खाने का महत्त्व है। मिथिला में पारम्परिक रूप से इस दिन मिट्टी, पानी आदि से सामूहिक खेल होता है। तालाब में एक साथ घुसकर जलक्रीडा करते हैं। इस खेल के दौरान तालाबों की सफाई भी हो जाती है।

वरूथिनी एकादशी व्रत, 18 अप्रैल, 2020

चैत्र मास के शुक्लपक्ष की एकादशी है। पिछली रात्रि 10 बजे से एकादशी का आरम्भ हो रहा है, अतः इसी दिन वैष्णवों और गृहस्थों के लिए व्रत होगा तथा अगले दिन कुश के जल से पारणा होगी।

वल्लभाचार्य जयन्ती, 18 अप्रैल, 2020

वैशाख कृष्ण एकादशी। भक्तिकालीन सगुणधारा की कृष्णभक्ति शाखा के आधारस्तंभ एवं पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य का जन्म विक्रम संवत् 1535 अर्थात् 1479 ई. में हुआ था। मध्यकालीन हिन्दी के कवियों में सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास आदि इन्ही की परम्परा में हुए।

अक्षय तृतीया, 26 अप्रैल, 2020

वैशाख शुक्ल तृतीया। मान्यता के अनुसार इसी दिन त्रेता युग का आरम्भ हुआ था। इस दिन किये गये दान को अक्षय फल वाला माना जाता है।

गणेश चतुर्थी, 26 अप्रैल, 2020

परशुराम जयन्ती, 26 अप्रैल, 2020

वैशाख शुक्ल तृतीया। भगवान् परशुराम का अवतार इसी दिन हुआ था।

आदिशंकराचार्य जयन्ती, 28 अप्रैल, 2020, मंगलवार

वैशाख शुक्ल पंचमी। परम्परानुसार, आदि शंकराचार्य की 2527वीं जयन्ती है। आदि शंकराचार्य की इस जन्मवर्ष को इतिहासकार लोग नहीं मानते फिर भी शंकराचार्य के मठों में वैशाख शुक्ल पंचमी को उनकी जयन्ती मनाने का प्रचलन है।

रामानुजाचार्य जयन्ती, 28 अप्रैल, 2020

वैशाख शुक्ल पंचमी। इस वर्ष रामानुजाचार्य की 1002वीं जयन्ती होगी। विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक रामानुजाचार्य का जन्म 1017 ई. में तमिलनाडु में हुआ था। इन्होंने चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु की उपासना करने की परम्परा चलायी तथा, गृहस्थों को भी भक्तिमार्ग तथा उपासना मार्ग के द्वारा मोक्ष से जोड़ा। सम्पूर्ण मध्यकाल की भक्तिधारा पर इनके दर्शन का प्रभाव है।

जह्नुसप्तमी, 30 अप्रैल, 2020

पौराणिक मान्यता के अनुसार गंगावतरण के समय जह्नुमुनि एक पर्वत पर तपस्या कर रहे थे तो उसी रास्ते से आ रही गंगा के गर्जन का स्वर उन्हें सुनाई दिया। मुनि ने तपस्या भंग होने के कारण क्रोधित होकर गंगा के जय को पी लिया। बाद में राजा भगीरथ के द्वारा उसनकी स्तुति की गयी तो जह्नु ने कहा कि यदि अब मैं गंगा को अपने मुख से निकालता हूँ तो वह अपवित्र कहलायेगी, अतः उन्होंने अपने कान से गंगा की धारा को मुक्त किया। मान्यता के अनुसार भागलपुर के पास सुल्तानगंज में अजगवीनाथ में यह घटना इसी दिन हुई थी।

जानकी नवमी, दिनांक 01 मई, 2020

वैशाख शक्ल नवमी तिथि। राजा जनक के द्वारा यज्ञभूमि के शोधन के लिए हल चलाने के क्रम में जगज्जननी जानकी का प्रादुर्भाव इसी दिन माना जाता है। इसे मध्याह्नव्यापिनी व्रत माना गया है। रामानन्दाचार्य के वैष्णवमताब्जभास्कर तथा अन्य स्रोतों (विशेष विवेचन इस अंक में लेख के रूप में देखें) के अनुसार इस दिन जानकी नवमी का व्रत किया जाना चाहिए तथा इस अवसर पर उत्सव मनाना चाहिए।

रविव्रत विसर्जन, 03 मई, 2020

छह मास के लिए जो रविव्रत करते हैं, उसकी समाप्ति इस दिन होगी। साथ ही सप्ताडोरा का भी विसर्जन होगा।

नरसिंह चतुर्दशी, 06 मई, 2020

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी तिथि। इस दिन भगवान् विष्णु के दशावतारों में नरसिंहावतार हुआ था।

बुद्ध-जयन्ती एवं कूर्म-जयन्ती, 07 मई, 2020

वैशाख पूर्णिमा। इसी दिन बुद्ध-जयन्ती तथा कूर्म-जयन्ती मनायी जाती है।

***

मातभूमि-वंदना

(अथर्ववेद, काण्ड सं. 12, सूक्त सं. 1)

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामछावदामसि॥२७॥

जिस हमारी भूमि में वृक्ष और वनस्पति बहुतायत से हैं, और सब स्थिर होकर रहते हैं जो अपने अनेक ऊपर कहे हुए गुणों से भरी पूरी हैं, और सबका आधार है, हमसे अच्छी तरह सुरक्षित की गयी उस पृथ्वी की हम प्रेम सहित स्तुति गाते हैं।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम्॥२८॥

हम किसी के दुःख का कारण न बनें॥28॥

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे॥२९॥

जिसकी ऊपर की सतह को तलाश करने से अनेक लाभ हो सकते हैं, जिसे अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर ने अपनी शक्ति से धारण किया है, बल बढानेवाले घृत और पुष्टिकारक अनेक भोजन के पदार्थ अन्न आदि को उत्पन्न करती है, लंबी-चौड़ी और प्राणिमात्र के रहने योग्य है, उस भूमि से हम प्रार्थना करते हैं कि हे मातृभूमि तुम हमें सहारा दो॥29॥

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि॥३०॥

हे मातृभूमि तुम उस चारों ओर से हमारी शुद्धि के लिए निर्मल जल बहाती हो। जो कोई हमारा अप्रिय करने की इच्छा करे अथवा हमारा अनिष्ट करे, उसके साथ हम भी वैसा ही वर्ताव करे और उत्कृष्ट उद्योग करके हम अपनी हर प्रकार से उन्नति करें॥30॥

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः॥३१॥

हे हमारी मातृभूमि, तुम्हारी जा जो दिशाएँ और उपदिशाएँ हैं, उनमें मनुष्य तुम्हारे हित करनेवाले होवें। इसी प्रकार तेरे हित के लिए यत्न करते हुए हम भी उन सबका कल्याण करें, हम जहाँ कहीं रहें अपनी योग्यता बढाते रहें, सुख से रहें और हमारा अधःपात कभी न हो॥31॥

- क्रमशः अगले अंक में

रामावत संगत से जुड़िए

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी; किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं; अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं; अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा; किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी; किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि ॐ-जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (२.७)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जों में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ इस http://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर क्लिक करना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

**

महावीर मन्दिर में रामनवमी की आवश्यक पूजा

महावीर कैंसर संस्थान के बाह्य रोगी विभाग के रोगियों और उनके परिचारकों को निःशुल्क भोजन

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

महावीर मन्दिर, पटना

महावीर मंदिर न्यास, पटना ने मुख्यमंत्री राहत कोष में १ करोड़ रुपए की सहयोग राशि कोरोना वायरस की विभीषिका को समूल नष्ट करने एवं गरीबों को भोजन सुलभ कराने की सरकारी योजना को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से दिया है।

अतीत में भी मुजफ्फरपुर जिले में बच्चों के बीच व्याप्त मस्तिष्क ज्वर के उपचार में महावीर मंदिर ने १२ लाख रुपये की दवा तथा ग्लूकोज जिलाधिकारी, मुजफ्फरपुर को दिया था। कोरोना वायरस के दमन तथा गरीबों को भोजन उपलब्ध कराने हेतु और भी कोई जवाबदेही मिलती है, तो महावीर मंदिर न्यास सहर्ष एवं पूरी तत्परता के साथ उसका पालन करेगा।

किशोर कुणाल,
सचिव,
महावीर मंदिर न्यास, पटना।

Counter foil
State Bank of India
Maurya Lok Complex Branch
Branch M.L.C., Patna
Date 25.03.2020
Received ₹ 10000000.00
From Shri Mahavir Sthan Nyas Samiti
For remittance of NEFT/RTGS by way of
(i) Transfer (only NEFT), (ii) Cash (only NEFT), (iii) Cheque (NEFT/RTGS) using
cheque No. 370550
favouring Chief Minister Relief Fund Bihar
A/c No. 20651040000022 57
IFSC Code IBKL0002065
Beneficiary Bank & Branch IDBI Muzaffarpur, Bihar
Amount ₹ 10000000.00
Bank's Charges ₹
Total ₹
Rupees One crore only
For office Use
UTR No.
Branch Manager
SBINR52020032500022985

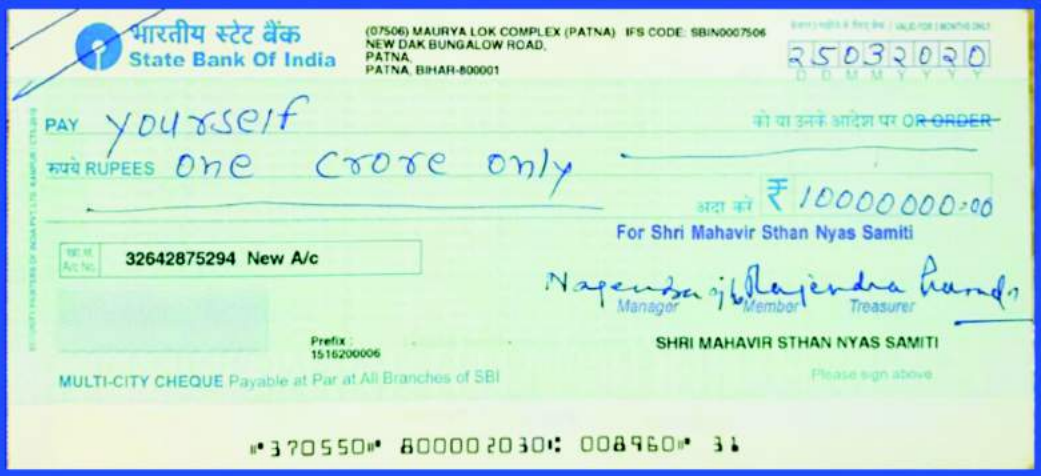
भारतीय स्टेट बैंक
State Bank Of India
(07506) MAURYA LOK COMPLEX (PATNA) IFS CODE: SBIN0007506
NEW DAK BUNGALOW ROAD,
PATNA,
PATNA, BIHAR-800001
25032020
PAY yourself
को या उनके आदेश पर OR ORDER
रुपये RUPEES One crore only
अदा करें ₹ 10000000.00
For Shri Mahavir Sthan Nyas Samiti
32642875294 New A/c
Manager Member Treasurer
Prefix 1516200006
SHRI MAHAVIR STHAN NYAS SAMITI
MULTI-CITY CHEQUE Payable at Par at All Branches of SBI
Please sign above
⑈370550⑈ 800002030⑆ 008960⑈ 31

मुख्यमंत्री आपदा राहत कोष में 1 करोड़ रुपए की सहयोग राशि

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश ऑफसेट, नया टोला, पटना द्वारा मुद्रित